प्राकृत भाषा प्रबोधिनी

डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा

प्राकृत भाषा प्रबोधिनी

डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा
सह-आचार्य
प्राच्यविद्या एवं भाषा विभाग

जैन विश्वभारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूँ - 341306 (राज.)

ज्ञातव्य और उपयोगी विषयों की अवतारणा की गयी है, जो पढ़ते ही हृदय में पैठ जमा लेते हैं। प्रयोजनीय नियमों, रूपों और उदाहरणों को व्याख्यापूर्वक समझाने का प्रयास भी प्रस्तुत कृति में किया गया है। व्याकरण, रचना और अनुवाद सम्बन्धी उन प्रारम्भिक बातों का समावेश करने का भी प्रयत्न कया गया है, जिनकी आवश्यकता भाषा को सीखने के लिए अपेक्षित है। उदाहरण-वाक्य और प्रयोग-वाक्यों से कोई भी पाठक प्राकृत बोलने और लिखने का अभ्यास कर सकता है।

प्राकृत में शब्दरूपों एवं क्रियारूपों में विकल्पों का प्रयोग बहुत होता है। प्राकृत जनभाषा होने से यह स्वाभाविक भी है। अतः इस पुस्तक में पाठक को प्रायः शब्द या क्रिया के रूपों में विकल्पों की बहुलता प्राप्त होगी।

कृतज्ञता

इस कृति की रचना की पृष्ठभूमि में तेरापंथ धर्मसंघ के अधिशास्ता आचार्य श्री महाश्रमणजी एवं साध्वी प्रमुखाश्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद रहा है, जिसके फलस्वरूप ही यह मेरा लघुप्रयास सुधीजनों के सम्मुख कृति के रूप में उपस्थित है। मैं अंतस्तल से आचार्यश्री व साध्वी प्रमुखाश्री के प्रति श्रद्धावनत हूँ।

साध्वी मंगलप्रज्ञाजी (पूर्व कुलपति, जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय) की सतत प्रेरणा एवं मार्गदर्शन को प्राप्त कर, मैंने इस पुस्तक को निबद्ध करने का प्रयास किया है। अतः मैं साध्वीजी के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। वर्तमान कुलपति समणी चारित्रप्रज्ञाजी के प्रति भी हार्दिक आभार ज्ञापन, क्योंकि कुलपति महोदया की अनुज्ञा से 'प्राकृत भाषा प्रबोधिनी' पुस्तक के रूप में जन-सामान्य के समक्ष प्रस्तुत है।

जैन विश्वभारती संस्थान के संस्कृत एवं प्राकृत विभाग के पूर्व विभागाध्यक्ष प्रो. जगतराम भट्टाचार्य के प्रति श्रद्धावनत हूँ, जिनसे समय-समय पर मिले महत्त्वपूर्ण निर्देशन से लाभान्वित होकर, मैं इस कार्य को पूर्ण करने में सक्षम हो सकी हूँ। इसी विभाग के पूर्व सहाचार्य डॉ. जिनेन्द्र जैन की आभारी हूँ, जिन्होंने सतत सहयोग प्रदान किया। वर्तमान विभागाध्यक्ष प्रो. दामोदर शास्त्री के मार्गदर्शन में इस कृति को संशोधित और परिवर्द्धित किया गया उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता। इसी विभाग में सहायक आचार्य के रूप में कार्यरत डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज के उल्लेखनीय सहयोग के प्रति साधुवाद। टंकण कार्य को श्री सुनील कुमार महतो ने बड़े मनोयोग से किया, वे धन्यवाद के पात्र हैं। प्रस्तुत कृति में सहयोग प्रदाता समस्त समणीवृन्द, मुमुक्षु बहिनों के प्रति भी आत्मीय कृतज्ञता। विशेषतः इस कार्य में समणीनियोजिका डा. समणी ऋजुप्रज्ञाजी का सतत आशीर्वाद एवं स्निग्ध प्रेरणा मिलती रही, उनके चरणों में मेरा नमन।

अग्रिम आभार उन जिज्ञासु पाठकों एवं विद्वानों के प्रति भी है, जो इस पुस्तक को गहराई से पढ़कर, मुझे अपनी प्रतिक्रिया, सम्मति आदि से अवगत करायेंगे तथा इसके अग्रिम संशोधन-परिवर्द्धन में समभागी होंगे।

समणी संगीत प्रज्ञा

भूमिका

प्राकृत भाषा : स्वरूप एवं विकास

प्राकृत : भारतीय आर्य भाषा

भाषाविदों ने भारत-ईरानी भाषा प्रशाखा के अन्तर्गत 'भारतीय आर्य शाखा' परिवार का विवेचन किया है। प्राकृत इसी भाषा-परिवार की एक आर्य भाषा है। विद्वानों ने भारतीय आर्यभाषा परिवार की भाषाओं के विकास के तीन युग निश्चित किये हैं–

1. प्राचीन भारतीय आर्यभाषाकाल (1600 ई.पू. से 600 ई.पू.)
2. मध्यकालीन आर्यभाषाकाल (600 ई.पू. से 1000 ई. तक)
3. आधुनिक आर्यभाषाकाल (1000 ई. से वर्तमान समय तक)

प्राकृत भाषा का इन तीनों कालों से किसी न किसी रूप में सम्बन्ध बना हुआ है।

वैदिक भाषा प्राचीन आर्य भाषा है। उसका विकास तत्कालीन लोक-भाषाओं से हुआ है। भाषाविदों ने प्राकृत एवं वैदिक भाषा में ध्वनितत्त्व एवं विकास-प्रक्रिया की दृष्टि से कई समानताएँ परिलक्षित की हैं। अतः ज्ञात होता है कि वैदिक भाषा और प्राकृत के विकसित होने का कोई एक लौकिक समान धरातल रहा है। किसी जनभाषा के समान तत्त्वों पर ही इन दोनों भाषाओं का भवन निर्मित हुआ है, किन्तु आज उस आधारभूत भाषा का कोई साहित्य या बानगी हमारे पास न होने से केवल हमें वैदिक भाषा और प्राकृत साहित्य में उपलब्ध समान भाषा-तत्त्वों के अध्ययन पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इससे इतना तो स्पष्ट है कि वैदिक भाषा के स्वरूप को अधिक उजागर करने के लिए प्राकृत भाषा का गहन अध्ययन आवश्यक है। प्राकृत भाषा का स्वरूप भी बिना वैदिक भाषा को जाने या समझे बिना स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। फिर भी दोनों स्वतंत्र और समर्थ भाषाएँ हैं, इस कथन में कोईविरोध नहीं आता।

बोलचाल की भाषा अथवा कथ्य भाषा प्राकृत का वैदिक भाषा के साथ जो सम्बन्ध था, उसी के आधार पर साहित्यिक प्राकृत भाषा का स्वरूप निर्मित हुआ है। अतः

जाती है तब वह काव्य की भाषा बनने लगती है। प्राकृत भाषा को यह सौभाग्य दो तरह से प्राप्त है। प्राकृत में जो आगम ग्रंथ, व्याख्या-साहित्य, कथा एवं चरितग्रंथ आदि लिखे गये, उनमें काव्यात्मक सौन्दर्य और मधुर रसात्मकता का समावेश है। काव्य की प्रायः सभी विधाओं–महाकाव्य, खण्डकाव्य, मुक्तककाव्य आदि को प्राकृत भाषा ने समृद्ध किया है। इस साहित्य ने प्राकृत भाषा को लम्बे समय तक प्रतिष्ठित रखा है। अशोक के शिलालेखों के लेखन-काल (ई.पू. तीसरी शताब्दी) से आज तक इन अपने 2300 वर्षों के जीवन काल में प्राकृत भाषा ने अपने काव्यात्मक सौन्दर्य को निरन्तर बनाये रखा है।

प्राकृत भाषा की इसी मधुरता और काव्यात्मकता का प्रभाव है कि भारतीय काव्यशास्त्रियों ने काव्य के अपने लक्षण-ग्रन्थों में प्राकृत की सैकड़ों गाथाओं के उद्धरण दिये हैं। अनेक सुभाषितों को उन्होंने इस बहाने सुरक्षित किया है। ध्वन्यालोक की टीका में अभिनवगुप्त ने प्राकृत की जो गाथाएँ दी हैं, उनमें से एक उक्ति द्रष्टव्य है–

चन्दमऊएहिं णिसा, णलिनी कमलेहिं कुसुमगुच्छेहिं लआ।
हंसेहिं सरहसोहा, कव्वकहा सज्जणेहिं करइ गरुइ।। (2.50 टीका)

अर्थात् रात्रि चंद्रमा की किरणों से, नलिनी कमलों से, लता पुष्प के गुच्छों से, शरद हंसों से और काव्यकथा सज्जनों से अत्यन्त शोभा को प्राप्त होती है।

अलंकारों के प्रयोग में भी प्राकृत गाथाएँ बेजोड़ हैं। प्रायः सभी अलंकारों के उदाहरण प्राकृत काव्य में प्राप्त हैं। अलंकारशास्त्र के पंडितों ने अपने ग्रंथों में प्राकृत गाथाओं को उनके अर्थ-वैचित्र्य के कारण भी स्थान दिया है। एक-एक शब्द के कई-कई अर्थ प्रस्तुत करने की क्षमता प्राकृत भाषा में विद्यमान है। गाथासप्तशती में ऐसी कई गाथाएँ हैं, जो शृंगार और सामान्य दोनों अर्थों को व्यक्त करती हैं। अर्थान्तरन्यास प्राकृत काव्य का प्रिय अलंकार है। सेतुबन्ध का एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

ते विरला सप्पुरिसा, जे अभणन्ता घडेन्ति कज्जालावे।
थोअ च्चिअ ते वि दुमा, जे अमुणिअकुसुमणिग्गमा देन्ति फलं।।

(सेतुबन्ध 3.9)

अर्थात् ऐसे सत्पुरुष संसार में कम होते हैं, जो बिना कहे ही कार्य-योजना का अनुष्ठान करते हैं। ऐसे वृक्ष भी थोड़े होते हैं, जो पुष्पोद्गम को बिना प्रकट किये ही फल प्रदान करते हैं।

''इस प्रकार काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते समय आनन्दवर्धन, भोजराज, मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि आलंकारिकों द्वारा

काव्य-लक्षणों के उदाहरणों के लिए प्राकृत पद्यों को उद्धृत करना प्राकृत के साहित्यिक सौन्दर्य का परिचायक है।'' इस प्रकार वैदिक युग, महावीर युग एवं उसके बाद के विभिन्न कालों में प्राकृत भाषा का स्वरूप क्रमशः स्पष्ट हुआ है और उसका महत्त्व विभिन्न क्षेत्रों में बढ़ा है।

भारतीय भाषाओं के आदिकाल की जन-भाषा से विकसित होकर प्राकृत स्वतंत्र रूप से विकास को प्राप्त हुई। बोलचाल और साहित्य के पद पर वह समान रूप से प्रतिष्ठित रही है। उसने देश की चिन्तनधारा, सदाचार और काव्य-जगत् को अनुप्राणित किया है, अतः प्राकृत भारतीय संस्कृति की संवाहक भाषा है। प्राकृत ने अपने को किसी घेरे में कैद नहीं किया। इसके पास जो था, उसे वह जन-जन तक बिखेरती रही और जनसमुदाय में जो कुछ था, उसे वह बिना हिचक ग्रहण करती रही। इस तरह प्राकृत भाषा सर्वग्राह्य और सार्वभौमिक भाषा रही है। प्राकृत के स्वरूप की ये कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो प्राचीन समय से आज तक लोक-मानस को प्रभावित करती रही हैं।

वैदिक भाषा और प्राकृत

प्राकृत भाषा के स्वरूप को प्रमुख रूप से दो अवस्थाओं में देखा जा सकता है। वैदिक युग से महावीर युग के पूर्व तक के समय में जन-भाषा के रूप में जो प्राकृत प्रचलित थी, उसे प्रथमस्तरीय प्राकृत कहा जा सकता है। महावीर युग से ईसा की द्वितीय शताब्दी तक आगम-ग्रन्थों, शिलालेखों एवं नाटकों आदि में प्रयुक्त भाषा को द्वितीयस्तरीय प्राकृत नाम दिया जा सकता है और तीसरी शताब्दी के बाद ईसा की छठी-सातवीं शताब्दी तक प्रचलित एवं साहित्य में प्रयुक्त प्राकृत को तृतीयस्तरीय प्राकृत कह सकते हैं। इन दोनों स्तरों की प्राकृत के स्वरूप को संक्षेप में समझने के लिए पहले वैदिक भाषा और प्राकृत के सम्बन्ध को समझना होगा। प्राकृत की मूल भाषा वैदिक युग के समकालीन प्रचलित एक जन-भाषा थी। उसी से वैदिक एवं प्राकृत भाषा का विकास हुआ। अतः उस मूल लोकभाषा में जो विशेषताएँ थीं, वे दाय के रूप में वैदिक भाषा और प्राकृत को समान रूप से मिली हैं। प्रथमस्तरीय प्राकृत के स्वरूप को जानने के लिए वैदिक भाषा में प्राकृत के जो तत्त्व रहे हैं, उनका गहराई से अध्ययन किया जाना आवश्यक है।

यद्यपि प्रथमस्तरीय प्राकृत का साहित्य अनुपलब्ध हैं, तथापि महावीर युगीन द्वितीयस्तरीय प्राकृत की प्रवृत्तियों के प्रमाण वैदिक भाषा (छान्दस्) के साहित्य में प्राप्त होते हैं। डॉ. पी.डी. गुणे की कृति तुलनात्मक भाषाविज्ञान, पृ. 153 के अनुसार–''प्राकृतों का अस्तित्व निश्चित रूप से वैदिक बोलियों के साथ-साथ विद्यमान था।'' वस्तुतः ऋग्वेद की भाषा में भी कुछ सीमा तक हमें प्राकृतीकरण देखने को मिलता है। आधुनिक भाषाविदों

उपलब्ध है। दिगम्बर परम्परा के आगम शौरसेनी भाषा में उपलब्ध है।

प्राचीन आचार्यों ने मगध प्रान्त के अर्धांश भाग में बोली जाने वाली भाषा को अर्धमागधी कहा है ("मगहद्ध विसयभासानिबद्धं अद्धमागही"– निशीथचूर्णि)। कुछ विद्वान् इस भाषा को अर्धमागधी इसलिए कहते हैं कि इसमें आधे लक्षण मागधी प्राकृत के और आधे अन्य प्राकृत के पाये जाते हैं (प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास–नेमिचंद्र शास्त्री, पृ. 35)। वस्तुत पश्चिम में शूरसेन (मथुरा) और पूर्व में मगध के बीच इस भाषा का व्यवहार होता रहा है। अतः इसे अर्धमागधी कहा गया होगा। इस भाषा का समय की दृष्टि से ई.पू. चौथी शताब्दी तय किया जाता है।

(iii) शौरसेनी–शूरसेन (ब्रजमण्डल, मथुरा के आसपास) प्रदेश में प्रयुक्त होने वाली जनभाषा को शौरसेनी प्राकृत के नाम से जाना गया है। अशोक के शिलालेखों में भी इसका प्रयोग हुआ है। अतः शौरसेनी प्राकृत भी महावीर युग में प्रचलित रही होगी, यद्यपि उस समय का कोई लिखित शौरसेनी ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है, किन्तु उसी परम्परा में प्राचीन आचार्यों ने षट्खण्डागम आदि ग्रन्थों की रचना शौरसेनी प्राकृत में की है और आगे भी कई शताब्दियों तक इस भाषा में ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। अशोक के अभिलेखों में शौरसेनी के प्राचीन रूप प्राप्त होते हैं। नाटकों में पात्र शौरसेनी भाषा का प्रयोग करते हैं, अतः प्रयोग की दृष्टि से अर्धमागधी से शौरसेनी प्राकृत व्यापक मानी गयी है। इसका प्रचार मध्यदेश में अधिक था।

2. शिलालेखी प्राकृत

शिलालेखी प्राकृत के प्राचीनतम रूप अशोक के शिलालेखों में प्राप्त होते हैं। ये शिलालेख ई.पू. 3 के लगभग देश के विभिन्न भागों में अशोक ने खुदवाये थे। इससे यह स्पष्ट है कि जन-समुदाय में प्राकृत भाषा बहु-प्रचलित थी और राजकाज में भी उसका प्रयोग होता था। अशोक के शिलालेख प्राकृत भाषा की दृष्टि से तो महत्त्वपूर्ण हैं ही, साथ ही वे तत्कालीन संस्कृति के जीते-जागते प्रमाण भी हैं। अशोक ने छोटे-छोटे वाक्यों में कई जीवन-मूल्य जनता तक पहुँचाये हैं। वह कहता है–

प्राणानां साधु अनारम्भो, अपव्ययता अपभाण्डता साधु।

(तृतीय शिलालेख)

(प्राणियों के लिए की गयी अहिंसा अच्छी है, थोड़ा खर्च और थोड़ा संग्रह अच्छा है।)

सव पासंडा बहुसुता च असु, कल्याणागमा च असु।

(द्वादश शिलालेख)

(सभी धार्मिक सम्प्रदाय (एक दूसरे को) सुनने वाले हों और कल्याण का कार्य करने वाले हों।)

सम्राट् अशोक के बाद लगभग ईसा की चौथी शताब्दी तक प्राकृत में शिलालेख लिखे जाते रहे हैं, जिनकी संख्या लगभग दो हजार है। खारवेल का हाथीगुंफा शिलालेख, उदयगिरि एवं खण्डगिरि के शिलालेख तथा आन्ध्र राजाओं के प्राकृत शिलालेख साहित्यिक और इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। प्राकृत भाषा के कई रूप इनमें उपलब्ध हैं। खारवेल के शिलालेख में उपलब्ध नमो अरहंतानं नमो सवसिधानं पंक्ति में प्राकृत के नमस्कार मंत्र का प्राचीन रूप प्राप्त होता है। सरलीकरण की प्रवृत्ति का भी ज्ञान होता है। भारतवर्ष (भरधवस) शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख इसी शिलालेख की दशवीं पंक्ति में मिलता है। इस तरह प्राकृत के शिलालेख भारत के सांस्कृतिक इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करते हैं।

3. निया प्राकृत

प्राकृत भाषा का प्रयोग भारत के पड़ोसी प्रान्तों में भी बढ़ गया था। इस बात का पता निया प्रदेश (चीनी, तुर्किस्तान) से प्राप्त लेखों की भाषा से चलता है, जो प्राकृत भाषा से मिलती-जुलती है। निया प्राकृत का अध्ययन डॉ. सुकुमार सेन ने किया है, उनकी पुस्तक 'ए कम्पेरेटिव ग्रामर आफ मिडिल इण्डो-आर्यन' से ज्ञात होता है कि इन लेखों की प्राकृत भाषा का सम्बन्ध दरदी वर्ग की तोखारी भाषा के साथ है। अतः प्राकृत भाषा में इतनी लोच और सरलता है कि वह देश-विदेश की किसी की भाषा से अपना सम्बन्ध जोड़ सकती है।

4. प्राकृत धम्मपद की भाषा

पालि भाषा में लिखा हुआ धम्मपद प्रसिद्ध है। किन्तु प्राकृत भाषा में लिखा हुआ एक और धम्मपद भी प्राप्त हुआ है, जिसे बी.एम. बरुआ और एस. मित्रा ने सन् १९२१ में कलकत्ता से प्रकाशित किया है। (यह प्राकृत भारती के पुष्प-70 में सन् 1990 में प्रकाशित हो चुका है।) यह खरोष्ठी लिपि में लिखा गया है। इसकी प्राकृत का सम्बन्ध पैशाची आदि प्राकृत से है।

5. अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत

आदि युग की प्राकृत भाषा का प्रतिनिधित्व लगभग प्रथम शताब्दी के नाटककार अश्वघोष के नाटकों की प्राकृत भाषा भी करती है। अर्धमागधी, शौरसेनी और मागधी प्राकृत की विशेषताएँ इन नाटकों से प्राप्त होती हैं। इससे यह ज्ञात होता

है कि इस युग में प्राकृत भाषा का प्रयोग क्रमशः बढ़ रहा था और आगम ग्रन्थों की भाषा कुछ-कुछ नया स्वरूप ग्रहण कर रही थी।

मध्ययुग

ईसा की दूसरी से छठी शताब्दी तक प्राकृत भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता रहा। अतः इसे प्राकृत भाषा और साहित्य का समृद्ध युग कहा जा सकता है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस समय प्राकृत का प्रयोग होने लगा था। महाकवि भास ने अपने नाटकों में प्राकृत को प्रमुख स्थान दिया। कालिदास ने पात्रों के अनुसार प्राकृत भाषाओं के प्रयोग को महत्त्व दिया। इसी युग के नाटककार शूद्रक ने विभिन्न प्राकृतों का परिचय कराने के उद्देश्य से मृच्छकटिकम् प्रकरण की रचना की। यह लोकजीवन का प्रतिनिधि नाटक है। अतः उसमें प्राकृत के प्रयोगों में भी विविधता है।

इसी युग में प्राकृत में कथा, चरित, पुराण एवं महाकाव्य आदि विधाओं में ग्रन्थ लिखे गये। उनमें जिस प्राकृत का प्रयोग हुआ, उसे सामान्य प्राकृत कहा जा सकता है, क्योंकि तब-तक प्राकृत ने एक निश्चित स्वरूप प्राप्त कर लिया था, जो काव्य-लेखन के लिए आवश्यक था। प्राकृत के इस साहित्यिक स्वरूप को महाराष्ट्री प्राकृत कहा गया है। इसी युग में गुणाढ्य ने बृहत्कथा नामक कथा-ग्रन्थ प्राकृत में लिखा, जिसकी भाषा पैशाची कही गयी है। इस तरह इस युग के साहित्य में प्रमुख रूप से जिन तीन प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है, वे हैं–1. महाराष्ट्री, 2. मागधी, 3. पैशाची। इन तीनों प्राकृतों का स्वरूप प्राकृत के वैयाकरणों ने अपने व्याकरण-ग्रन्थों में स्पष्ट किया है।

(क) महाराष्ट्री प्राकृत

जिस प्रकार स्थान-भेद के कारण शौरसेनी आदि प्राकृतों को नाम दिये जाते हैं, उसी तरह महाराष्ट्र प्रान्त की जनबोली से विकसित प्राकृत का नाम महाराष्ट्री प्रचलित हुआ है। इसने मराठी भाषा के विकास में भी योगदान दिया है। महाराष्ट्री प्राकृत के वर्ण अधिक कोमल और मधुर प्रतीत होते हैं। अतः इस प्राकृत का काव्य में सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। ईसा की प्रथम शताब्दी से वर्तमान युग तक इस प्राकृत में ग्रन्थ लिखे जाते रहे हैं। प्राकृत वैयाकरणों ने भी महाराष्ट्री प्राकृत के लक्षण लिखकर अन्य प्राकृतों की केवल विशेषताएँ गिना दी हैं।

(ख) मागधी

मगध प्रदेश की जनबोली को सामान्य तौर पर मागधी प्राकृत कहा गया है। मागधी कुछ समय तक राजभाषा थी। अतः इसका सम्पर्क भारत की कई बोलियों के

साथ हुआ। इसीलिए पालि, अर्धमागधी आदि प्राकृतों के विकास में मागधी प्राकृत को मूल माना जाता है। इसमें कई लोक-भाषाओं का समावेश था। मागधी का प्रयोग अशोक के शिलालेखों में हुआ है और नाटककारों ने अपने नाटकों में इसका प्रयोग किया है, किन्तु इसका कोई स्वतंत्र ग्रन्थ प्राप्त नहीं हुआ है।

(ग) पैशाची प्राकृत

देश के उत्तर-पश्चिम प्रान्तों के कुछ भाग को पैशाच देश कहा जाता था। वहाँ पर विकसित इस जनभाषा को पैशाची प्राकृत कहा गया है। यद्यपि इसका कोई एक स्थान नहीं है। विभिन्न स्थानों के लोग इस भाषा को बोलते थे। प्राकृत भाषा से समानता होने के कारण पैशाची को भी प्राकृत का एक भेद मान लिया गया है। इस भाषा में बृहत्कथा नामक ग्रन्थ लिखे जाने का उल्लेख है, किन्तु वह मूल रूप में प्राप्त नहीं है। उसके रूपान्तर प्राप्त हैं, जिनसे मूल ग्रन्थ का महत्त्व सिद्ध होता है।

इस प्रकार मध्ययुग में प्राकृत भाषा का जितना अधिक विकास हुआ, उतनी ही उसमें विविधता आयी, किन्तु साहित्य में प्रयोग बढ़ जाने के कारण विभिन्न प्राकृतें महाराष्ट्री प्राकृत के रूप में ''एकरूपता को ग्रहण करने लगीं।'' प्राकृत के वैयाकरणों ने साहित्य के प्रयोगों के आधार पर महाराष्ट्री प्राकृत के व्याकरण के कुछ नियम निश्चित कर दिये। उन्हीं के अनुसार कवियों ने अपने ग्रन्थों में महाराष्ट्री प्राकृत का प्रयोग किया। इससे प्राकृत भाषा में स्थिरता तो आयी, किन्तु उसका जन-जीवन से सम्बन्ध दिनों दिन घटता चला गया। वह साहित्य की भाषा बनकर रह गयी। अतः जनबोली का स्वरूप उसे कुछ भिन्नता लिए हुए प्रचलित होने लगा, जिसे भाषाविदों ने अपभ्रंश भाषा नाम दिया है। एक तरह से प्राकृत ने लगभग 6-7वीं शताब्दी में अपना जनभाषा अथवा मातृभाषा का स्वरूप अपभ्रंश को सौंप दिया। यहाँ से प्राकृत भाषा के विकास की तीसरी अवस्था प्रारम्भ हुई।

अपभ्रंश युग (आधुनिक युग)

प्राकृत एवं अपभ्रंश

प्राकृत एवं अपभ्रंश इन दोनों भाषाओं का क्षेत्र प्रायः एक जैसा था तथा इनमें साहित्य-लेखन की धारा भी समान थी। विकास की दृष्टि से भी दोनों भाषाएँ जनबोलियों से विकसित हुई हैं। व्याकरण की भी बहुत कुछ इनमें समानता है, किन्तु इस सब से प्राकृत और अपभ्रंश को एक नहीं माना जा सकता। दोनों ही स्वतंत्र भाषाएं हैं। दोनों की अपनी अलग पहचान है। प्राकृत में सरलता की दृष्टि से जो बाधा रह गयी थी, उसे

अपभ्रंश भाषा ने दूर करने का प्रयत्न किया। कारकों, विभक्तियों, प्रत्ययों के प्रयोग में अपभ्रंश निरन्तर प्राकृत से सरल होती गयी है।

अपभ्रंश, प्राकृत और हिन्दी भाषा को परस्पर जोड़ने वाली कड़ी है। वह आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं (राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि) की पूर्ववर्ती अवस्था है। अपभ्रंश भाषा में छठी शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक पर्याप्त साहित्य लिखा गया है।

महाकवि स्वयंभू को अपभ्रंश का आदिकवि कहा जा सकता है। इसके बाद महाकवि रइधू तक कई महाकवियों ने इस भाषा को समृद्ध किया है। अपभ्रंश भाषा प्राकृत भाषा के विकास की तीसरी अवस्था मानी जाती है। ईसा की छठी शताब्दी से लगभग बारहवीं शताब्दी तक अपभ्रंश का उत्कर्ष युग रहा। इस बीच प्राकृत भाषाओं में भी काव्य लिखे जाते रहे, किन्तु जनबोली के रूप में अपभ्रंश प्रयुक्त होती रही। इस तरह एक ही समय में समानान्तर रूप से प्रचलित इन दोनों भाषाओं में कई समानताएं एकत्र होती रहीं। भाषा के सरलीकरण की प्रवृत्ति को अपभ्रंश ने प्राकृत से ग्रहण किया और कई शब्द तथा व्याकरणात्मक विशेषताएँ भी उसने ग्रहण कीं। इन सब प्रवृत्तियों को अपभ्रंश ने अपनी अंतिम अवस्था में क्षेत्रीय भाषाओं को सौंप दिया। इस तरह अपभ्रंश भाषा का महत्त्व प्राकृत और आधुनिक भारतीय भाषाओं के आपसी सम्बन्ध को जानने के लिए आवश्यक है।*

* प्राकृत स्वयं शिक्षक (भाग-1), प्रो. प्रेम सुमन जैन, प्रकाशकः राजस्थान प्राकृतभारती अकादमी, जयपुर से साभार उद्धृत

प्राकृत व्याकरण की संक्षिप्त जानकारी

विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। यदि भाषा नहीं होती तो विचार सामुदायिक रूप धारण नहीं कर पाता। भाषा के विशिष्ट ज्ञान के लिए उसके व्याकरण ग्रन्थ पर ध्यान देना आवश्यक है। सर्वप्रथम यह जानना होगा कि व्याकरण का अर्थ क्या है? उसका प्रयोजन क्या है तथा इसका महत्त्व क्या है?

व्याकरण शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है–वि+आ+कृ+ल्युट्। 'वि' अर्थात् विशेष प्रकार से और 'आ' अर्थात् चारों ओर से तथा 'कृ' अर्थात् करना। अर्थात् व्याकरण वह शास्त्र है, जो चारों ओर से और विशेष प्रकार से भाषा-तत्त्व का नियमन करता है।

अर्थ

'व्याक्रियन्ते विविच्यन्ते प्रकृतिप्रत्ययादयो यत्र तद् व्याकरणम्', जिसमें शब्दों के प्रकृति (मूल शब्द या धातु) और प्रत्ययों आदि का विवेचन किया जाता है, उसे व्याकरण कहते हैं।

प्रयोजन

'साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः' (वाक्यपदीय 1-143)–साधु या शिष्ट-प्रयोगोचित शब्दों का ज्ञान कराना व्याकरण का उद्देश्य है।

'रक्षोहागमलघ्वसंदेहाः प्रयोजनम्।' पतंजलि ने इस सूत्र में व्याकरण के पांच प्रयोजन बताये हैं–रक्षा, ऊह, आगम, लघु तथा असंदेह।

व्याकरण के ये मुख्य प्रयोजन हैं। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि व्याकरण वह तत्त्व है, जिससे जन-सामान्य को भी भाषा समझने की अपूर्व दृष्टि प्राप्त होती है।

व्याकरण शब्दों की शुद्धि सिखाता है, प्रकृति और प्रत्यय का विभाजन कर उत्सर्ग और अपवाद नियमों से किसी शब्द की साधुता और असाधुता का विवेचन कर उसे प्रयोग योग्य बना देता है, प्रत्ययों के द्वारा शब्द-रचना का मार्ग बताता है।

प्राकृत व्याकरण ग्रंथ

ढाई हजार वर्ष पुराना प्राकृत साहित्य आज उपलब्ध है। 'आयारो' प्राचीनतम आगम के रूप में स्वीकृत है। आचारांग, स्थानांग, अनुयोगद्वार आदि में वचन, लिंग, कारक, समास, तद्धित, धातु, निरुक्त आदि प्राकृत व्याकरण के अंगों का उल्लेख है, किन्तु कोई भी प्राचीन प्राकृत व्याकरण उपलब्ध नहीं है।

उपलब्ध प्राकृत व्याकरणों का कालक्रम इस प्रकार है–

1. प्राकृत लक्षण

इसके रचयिता चंड हैं। इसका समय ई. 2-3 शताब्दी है। तीन पादों के 99 सूत्रों में प्राकृत व्याकरण का विवेचन किया गया है। इस ग्रंथ की अन्य चार प्रतियों में चतुर्थपाद भी मिलता है, जिसमें 4 सूत्र हैं। उपलब्ध प्राकृत व्याकरणों में यह सर्वप्राचीन है।

2. प्राकृतप्रकाश

इसके कर्त्ता वररुचि हैं। प्राकृत वैयाकरणों में चंड के बाद वररुचि प्रमुख वैयाकरण हैं। इनका समय ई. 4-5 शताब्दी माना जाता है। प्राकृतप्रकाश में 12 परिच्छेद हैं। नौ परिच्छेद तक महाराष्ट्री प्राकृत, दसवें में पैशाची, ग्यारहवें में मागधी और बारहवें में शौरसेनी के नियम हैं।

3. प्राकृतशब्दानुशासन

पुरुषोत्तमदेवकृत प्राकृतशब्दानुशासन में तीन से लेकर बीस अध्याय हैं। इनका समय ई. 12वीं शताब्दी है। इसमें शाकारी, चांडाली, शाबरी और विभाषाओं का भी विवेचन है।

4. सिद्धहेमशब्दानुशासन

प्राकृत व्याकरणशास्त्र को पूर्णता आचार्य हेमचन्द्र के सिद्धहेमशब्दानुशासन से प्राप्त हुई है। इसका काल भी ई. 12वीं शताब्दी है। आचार्य हेमचन्द्र ने विभिन्न विषयों पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं। इनकी विद्वत्ता की छाप इनके इस व्याकरण ग्रंथ पर भी है। इस ग्रंथ के हिन्दी, गुजराती, अंग्रेजी अनुवाद भी निकल चुके हैं। इसके आठ अध्याय हैं। प्रथम सात अध्यायों में संस्कृत व्याकरण का अनुशासन तथा आठवें में प्राकृत व्याकरण का निरूपण है। आठवें अध्याय में चार पादों में कुल 1119 सूत्र हैं। चतुर्थ पाद में शौरसेनी, मागधी, पैशाची, चूलिका पैशाची और अपभ्रंश प्राकृतों का शब्दानुशासन ग्रंथकार ने किया है तथा धात्वादेश की प्रमुखता है। इस ग्रंथ का यह वैशिष्ट्य है कि प्राचीन वैयाकरणों के ग्रंथों का उपयोग करते हुए भी अपने व्याकरण में बहुत-सी बातें नई और विशिष्ट शैली में प्रस्तुत की हैं।

5. प्राकृतशब्दानुशासन

त्रिविक्रम 13वीं शताब्दी के वैयाकरण थे। उन्होंने प्राकृत सूत्रों के निर्माण के साथ स्वयं उनकी वृत्ति भी लिखी है। इसमें तीन अध्याय तथा प्रत्येक अध्याय में 4-4 पाद हैं। कुल सूत्र 1036 हैं। यद्यपि इस कृति में हेमचन्द्र का ही अनुसरण किया गया है, फिर भी इसमें जो अनेकार्थ शब्द दिये गये हैं, वह प्रकरण हेमचन्द्र की अपेक्षा विशिष्ट है। कुछ अनेकार्थक शब्द, जैसे—अमार-टापू, कछुआ। करोड-कौआ, नारियल, बैल आदि। इसकी एक विशेषता यह भी है कि हेमचन्द्र द्वारा कहे हुए अपभ्रंश उदाहरणों की संस्कृत छाया भी इन्होंने दी है।

6. प्राकृतकल्पतरु

बंगाल निवासी श्रीराम शर्मा तर्कवागीश ने प्राकृत कल्पतरु नामक व्याकरण लिखा है। इनका समय 17वीं शताब्दी माना गया है। इस व्याकरण में तीन शाखाएं हैं। प्रथम शाखा में दस स्तबक, दूसरी में तीन तथा तीसरी शाखा में नागर और ब्राचड अपभ्रंश तथा पैशाची का विवेचन है।

7. प्राकृतरूपावतार

सिंहराज ने त्रिविक्रम प्राकृतव्याकरण को कौमुदी के ढंग से 'प्राकृतरूपावतार' में तैयार किया है। इनका समय 15-16वीं शताब्दी है। संज्ञा और क्रियापदों की रूपावली के ज्ञान के लिए यह व्याकरण कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

8. षड्भाषाचंद्रिका

इसके रचनाकार लक्ष्मीधर हैं। इनका समय 16वीं शताब्दी है। त्रिविक्रम के ग्रंथ को सरल करने के लिए उन्होंने यह व्याख्या लिखी है।

9. प्राकृतचंद्रिका

पं. शेषकृष्ण की प्राकृतचन्द्रिका श्लोकबद्ध प्राकृत व्याकरण है। इनका समय 16वीं शताब्दी है। इस ग्रंथ में नौ प्रकाश हैं।

10. प्राकृतमणिदीप

शैव विद्वान् अप्पयदीक्षित ने प्राकृतमणिदीप लिखा है। इनका समय भी 16वीं शताब्दी है। संक्षेप रुचि वाले पाठकों के लिए लिखे जाने के कारण यह ग्रंथ विस्तृत नहीं है।

11. प्राकृतसर्वस्व

यह ग्रंथ प्राच्य शाखा के प्रसिद्ध प्राकृतवैयाकरण मार्कण्डेय का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

इनका समय 16वीं शताब्दी है। डॉ. पिशल का कहना है कि महाराष्ट्री, जैनमहाराष्ट्री, अर्धमागधी और जैनशौरसेनी के अतिरिक्त अन्य प्राकृत बोलियों के नियमों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मार्कण्डेय कवीन्द्र का 'प्राकृतसर्वस्व' बहुत मूल्यवान है।

12. जैनसिद्धान्तकौमुदी

यह मुनि रत्नचंदजी की रचना है। इनका समय 17वीं शताब्दी है।

13. पिशेल का प्राकृत व्याकरण

इसके रचनाकार डॉ. आर. पिशेल हैं। इनका समय 19वीं शताब्दी है। आधुनिक भाषा-शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यह व्याकरण-ग्रंथ सर्वाधिक उपयोगी है।

इसके अतिरिक्त क्रमदीश्वर का 'संक्षिप्तसार', लंकेश्वर का 'प्राकृत कामधेनु', श्रुतसागर का 'औदार्यचिन्तामणि', शुभचन्द्र का 'चिन्तामणिव्याकरण', रघुनाथशर्मन का 'प्राकृतानन्द', अज्ञातकर्तृक 'प्राकृतपद्यव्याकरण' आदि व्याकरण ग्रंथ भी लिखे गये हैं।

इन उल्लिखित प्राकृत व्याकरण ग्रंथों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्राकृत व्याकरणों के भी ग्रंथों में उल्लेख मिलते हैं। इस प्रकार प्राकृत के अनेक व्याकरण ग्रंथ हैं।

प्राकृत के सामान्य नियम

अथ प्राकृतम् 1/1

अथ शब्द यहां मंगल और अधिकार अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। अथ शब्द मंगलसूचक होने के कारण किसी रचना के आरम्भ में प्रयुक्त होता है। अधिकार अर्थात् एक के बाद एक सूत्रों में पीछे की अनुवृत्ति ग्रहण करना। आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत की प्रकृति संस्कृत को माना है। उनके अनुसार संस्कृत में होने वाला (तत्र भवं) अथवा संस्कृत से आया हुआ (तत आगतं) प्राकृत शब्दानुशासन है। प्राकृत में प्रकृति, प्रत्यय, लिंग, कारक, समास और संज्ञा आदि को संस्कृत के समान जानना चाहिए।

प्रकृति - नाम, धातु, अव्यय, उपसर्ग आदि को प्रकृति कहते हैं।

प्रत्यय - संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होने वाले सि, औ आदि तथा धातुओं के साथ प्रयुक्त होने वाले तिप्, तस् आदि को प्रत्यय कहते हैं।

लिंग - पुल्लिंग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग को लिंग कहते हैं।

कारक - क्रिया के निमित्त कर्त्ता, कर्म करण आदि को कारक कहते हैं।

समास - दो या दो से अधिक शब्दों के संयोग को समास कहते हैं।

संज्ञा - स्वर, व्यंजन, लघु, गुरु आदि को संज्ञा कहते हैं।

'लोकात्' की अनुवृत्ति का यहां ग्रहण हुआ है। इसलिए ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ऐ औ, ङ, ञ, श, ष, विसर्ग और प्लुत (तीन मात्रा वाला) को छोड़कर शेष वर्ण-समुदाय को लोक व्यवहार से जानना चाहिए।

प्राकृत में स्वतंत्र रूप से ङ और ञ का अस्तित्त्व नहीं है, किन्तु ङ और ञ अपने वर्ग के व्यंजनों के साथ होते हैं, जैसे- गङ्गा, पञ्च। कहीं-कहीं व्याकरणों में ऐ और और भी मिलते हैं। जैसे-कैअवं, सौअरिअं। प्राकृत में स्वररहित व्यंजन नहीं होता है। द्विवचन और चतुर्थी विभक्ति भी नहीं होती। द्विवचन का प्रयोग बहुवचन के रूप में तथा चतुर्थी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। तादर्थ्य (उसके लिए) एकवचन में प्रायः चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग प्राप्त होता है।

2. बहुलम् 1/2

शास्त्र परिसमाप्ति तक 'बहुलं' सूत्र का अधिकार जानना चाहिए; बहुल का अर्थ है- कहीं सूत्र की प्रवृत्ति होती है, कहीं पर सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती है, कहीं पर विकल्प से होती है तो कहीं पर कुछ अन्य ही हो जाता है।

3. आर्षम् 1/3

ऋषियों की वाणी को आर्ष कहते हैं। आर्ष प्राकृत भी बहुलता युक्त होती है।

वर्ण

प्रत्येक पूर्ण ध्वनि को वर्ण कहते हैं, जैसे—अ, आ, क, ख....। संस्कृत में कुल 47 वर्ण हैं। उनमें 14 स्वर और 33 व्यंजन हैं। वर्ण के दो भेद हैं—

1. स्वर, 2. व्यंजन।

स्वर

अन्य वर्ण की सहायता के बिना जिसका उच्चारण हो सके, उसे स्वर कहते हैं। स्वर निम्न होते हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ।

प्राकृत में निम्न आठ स्वर ही होते हैं—

अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ।

उपर्युक्त स्वरों को दो भागों में विभक्त किया गया है—

1. ह्रस्व स्वर—अ, इ, उ, ए, ओ।

2. दीर्घ स्वर–आ, ई, ऊ, ए, ओ।

ए और ओ दीर्घस्वर हैं, परन्तु प्राकृत में संयोग परे होने पर ए और ओ को (उच्चारण की दृष्टि से) ह्रस्व स्वर माना गया है, जैसे–एक्केक्कं (एकैकम्), आरोग्गं (आरोग्यम्)।

यद्यपि प्राकृत में 'ऐ' और 'औ' स्वर का प्रयोग नहीं होता है, फिर भी बहुलता के कारण कोई-कोई शब्द मिलते भी हैं, यथा- कैअवं (कैतवं) सौअरिअं (सौन्दर्यम्)

स्वर परिवर्तन

प्राकृत में सामान्य रूप से स्वर-परिवर्तन की व्यवस्था इस प्रकार है–

1. दीर्घ स्वरों का ह्रस्वीकरण, 2. ह्रस्व स्वरों का दीर्घीकरण,

3. स्वरों को स्वर का आदेश, 4. अव्यय के स्वरों का लोप।

1. दीर्घ स्वरों का ह्रस्वीकरण

ह्रस्वः संयोगे 1/84

संयोग परे होने पर प्रयोग के अनुसार दीर्घ को ह्रस्व होता है।

(अ) प्राकृत में संयुक्त वर्ण का पूर्व अक्षर दीर्घ अर्थात् आ, ई, ऊ होते हैं वे क्रमशः अ, इ, उ में परिवर्तित हो जाते हैं, यथा–

(क) आ–अ–आम्रम्–अंबं, ताम्रम्–तंबं।

(ख) ई–इ–मुनीन्द्रः–मुणिन्दो, तीर्थम्–तित्थं।

(ग) ऊ–उ–चूर्णः–चुण्णो, ऊर्मि–उम्मि।

(ब) यदि संयुक्त वर्ण का पूर्व वर्ण ए और ओ होता है तब ए–इ में और ओ–उ में परिवर्तित हो जाते हैं, यथा–नरेन्द्रः–नरिन्दो, नीलोत्पलम्–नीलुप्पलं।

2. ह्रस्व स्वरों का दीर्घीकरण

लुप्त-य-र-व-श-ष-सां श-ष-सां दीर्घः 1/43

जिस शब्द के य, र, व, श, ष, स का लोप हो गया है और श, ष, स शेष बचा है तो उन शब्दों के आदि स्वर को दीर्घ हो जाता है।

प्राकृत में संयुक्त वर्ण में एक वर्ण का लोप होने पर पूर्व स्वर दीर्घ हो जाता है, यथा–

पश्यति–पासइ,

शिष्यः–सीसो।

3. स्वरों का स्वरों में परिवर्तन

(अ) ऋ वर्ण का प्राकृत में अ, इ, उ और रि होता है, यथा—

ऋतोऽत् 1/126

आदि ऋकार को अकार होता है।

ऋ > अ; घृतम्—घयं, कृतम्—कयं, वृषभः—वसहो, मृगः—मओ।

इत्कृपादौ 1/128

कृपा आदि शब्दों में आदि ऋकार को इकार होता है।

ऋ > इ; कृपा—किवा, हृदयम्—हिययं, भृंगारः—भिंगारो।

उदृत्वादौ 1/131

ऋतु आदि शब्दों के आदि ऋकार को उकार होता है।

ऋ > उ; ऋतुः—उऊ, पृष्ठः—पुट्ठो, पृथिवी—पुहुई, कृतान्तः—कुतन्तो, कृन्दं-कुंदं इत्यादि।

ऋ > रि; ऋद्धिः—रिद्धि, ऋक्षः—रिच्छो, ऋषिः—रिसी आदि।

(ब) कभी-कभी ऋ के स्थान पर आ, ए, ओ और ढि भी होता है। यह नियम *बहुत से शब्दों पर लागू नहीं है। लेकिन कुछ शब्दों पर इसका प्रभाव है, यथा—* कृशा—कासा, मृदुकं—माउक्कं, वृन्तं-वेण्टं, वोण्टं।

(स) संस्कृत का ऋकारान्त शब्द प्राकृत में तीन प्रकार का होता है— अर, आर और उ। यथा संस्कृत पितृ शब्द में पिअर और पिउ तथा भातृ शब्द का भायर होता है।

4. अव्यय के स्वरों का लोप

पदादपेर्वा 2/10

(अ) पद से परे अपि अव्यय के आदि अ का लोप विकल्प से होता है; यथा—

केण + अपि = केणवि-केणावि।

जणा + अपि = जणवि-जणावि।

इतेः स्वरात् तश्च द्विः 1/142

पद से परे इति के आदि स्वर का लोप होता है और स्वर से परे तकार को द्वित्व होता है।

(ब) पद से परे इति अव्यय के आदि इ का लोप होता है; यथा—

(तथा) तह + इति = तहत्ति,

(पुरुषः) पुरिसो + इति = पुरिसोत्ति।

त्यदाद्यव्ययात् तत्स्वरस्य लुक् 1/40

त्यद् आदि शब्दों और अव्यय से परे त्यद् आदि शब्द तथा अव्यय हो तो उनके आदि स्वर का बहुलता से लुक् होता है।

(स) सर्वनाम सम्बन्धी अव्यय के स्वर से परे सर्वनाम और अव्यय का स्वर हो तो आगे वाले पद के आदि स्वर का लोप हो जाता है।

अम्हे + एत्थ = अम्हेत्थ,

जइ + अहं = जइहं।

(द) स्वर से परे इव अव्यय हो तो इव का व्व हो जाता है। अनुस्वार से परे इव हो तो व ही होता है, द्वित्त्व नहीं होता; यथा–

साअरो + इव = साअरो व्व,

गेहं + इव = गेहंव।

व्यंजन

जो वर्ण स्वरों की सहायता से बोले जाते हैं, उन्हें व्यंजन कहते हैं। प्राकृत में निम्न व्यंजन होते हैं–

क ख ग घ

च छ ज झ

ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व स ह।

उच्चारण के अनुसार व्यंजनों के दो भेद हैं–1. अल्पप्राण, 2. महाप्राण।

महाप्राण–जिन वर्णों में 'ह' की ध्वनि का प्राण मिलता है, वे महाप्राण कहलाते हैं, जैसे–

क् + ह = ख

च् + ह = छ

ये 12 हैं–ख, घ, छ, झ, ठ, ढ, थ, ध, फ, भ, स, ह।

अल्पप्राण–जिन वर्णों में 'ह' की ध्वनि का प्राण नहीं मिलता, वे सब अल्पप्राण

कहे जाते हैं। वे ये हैं—क, ग, च, ज, ट, ड, त, द, प, ब, ण, न, म, य, र, ल, व।

संस्कृत में प्रयुक्त होने वाले ङ और ञ का प्रयोग प्राकृत में स्वतंत्र रूप से नहीं होता, किन्तु वर्गीय व्यंजन के साथ होता है, यथा- गङ्गा, पञ्च।

(*'श'* और *'ष'* का प्रयोग में नहीं होता है, अतः प्राकृत में 33 व्यंजनों के स्थान पर *29 व्यंजन* होते हैं। व और व का अभेद मानने से व्यंजन 28 होते हैं।)

व्यंजन के दो प्रकार हैं—

(1) असंयुक्त व्यंजन, (2) संयुक्त व्यंजन।

व्यंजन-परिवर्तन

(1) असंयुक्त व्यंजन

इसे सरल व्यंजन भी कहते हैं। क-ग-च-छ आदि व्यंजन स्वरसहित होते हैं, तब इन्हें सरल व्यंजन कहते हैं।

सरल व्यंजन परिवर्तन

तीन प्रकार के होते हैं—

1. आदि व्यंजन परिवर्तन, 2. मध्य व्यंजन परिवर्तन, 3. अंतिम व्यंजन परिवर्तन।

1. आदि व्यंजन परिवर्तन

नो णः 1/228

स्वर से परे असंयुक्त अनादि न को ण होता है। यथा

नरः—णरो, नदी—णई, निमग्नः—णिमग्गो।

आदेर्यो जः 1/245

पद की आदि में य को ज होता है।

य > ज; यशस्—जसो, यति—जई।

कुब्ज-कर्पर-कीलके-कः खोऽपुष्पे 1/181

कुब्ज; कर्पर और कीलक शब्दों के क को ख होता है।

क > ख; कुब्जः—खुज्जो, कीलकः—खीलओ।

पाटि-परुष-परिघ-पारिखा-पनस-पारि भद्रे फः 1/232

ञिन्नन्त पटि धातु और परुषादि शब्दों के प को फ होता है।

प > फ; परुषः—फरुसो, परिघः—फलिहो।

2. मध्य व्यंजन परिवर्तन

क-ग-च-ज-त-द-प-य-वां प्रायो लुक् 1/177

क-ग-च-ज-त-द-प-य-व का प्रायः लुक् होता है, तथा

अवर्णो य-श्रुतिः 1/180

क, ग, च, ज आदि का लोप होने पर शेष अवर्ण (अ, आ, आ...) यदि अवर्ण से परे हो तो उसको यकार की श्रुति होती है। जैसे–

क > का लुक् – लोकः-लो, शकटः–सयढो।

ग > लुक् – नगरम्–नयरं, नगः–नओ।

च > लुक् – वचनम्–वयणं, काचमणिः–कायमणि।

ज > लुक् – रजतं–रययं, गजः–गओ।

त > लुक् – लता–लया, वितानं–विआणं।

द > लुक् – गदा–गया, यदि–जइ।

प > लुक् – रिपुः–रिऊ, सुपुरुषः–सुउरिसो।

य > लुक् – वियोगः–विओओ, वायुना–वाउणा।

पो वः 2/231

स्वर से परे असंयुक्त और अनादि प को प्रायः व होता है।

प > व – शपथः–सवहो, शापः–सावो।

ख-घ-थ-ध-भाम् 1/187

स्वर से परे असंयुक्त अनादिभूत ख, घ, थ, ध और भ को प्रायः ह होता है।

ख, घ, थ, ध, भ का ह होता है।

ख > ह – साखा–साहा, मुखं–मुहं।

घ > ह – मेघः–मेहो, माघः–माहो।

थ > ह – नाथः–नाहो, मिथुनम्–मिहुणं।

ध > ह – साधु–साहू, बधिरः–बहिरो।

भ > ह – सभा–सहा, नभः–नहो।

निम्नलिखित असंयुक्त व्यंजनों का निम्न रूप से परिवर्तन होता है–

टो डः 1/195

स्वर से परे अनादि और असंयुक्त ट को ड होता है।

ट > ड – नटः–नडो, भटः–भडो।

ठो ढः 1/199

स्वर से परे असंयुक्त और अनादि ठ को ढ होता है।

ठ > ढ – मठः–मढो, सठः–सढो।

डो लः 1/202

स्वर से परे असंयुक्त तथा अनादि ड को प्रायः ल होता है।

ड > ल – तडागम्–तलायं, गरुडः–गरुलो।

बो वः 1/237

स्वर से परे, असंयुक्त तथा अनादि ब को व होता है।

ब > व – अलाबू–अलावू, शबलः–सवलो।

3. अन्तिम व्यंजन परिवर्तन

प्राकृत में व्यंजनान्त शब्द नहीं होते हैं। प्राकृत में जो शब्द व्यंजन अन्त वाले होते हैं, उनका या तो लोप होता है या उन्हें स्वर में तथा स्वरसहित व्यंजन में परिवर्तित कर दिया जाता है। कहीं-कहीं अन्तिम व्यंजन को अनुस्वार में बदल दिया जाता है, यथा–

1. अन्तिम व्यंजन का लोप; जैसे–यावत्–जाव, तावत्–ताव, यशस्–जसो।

2. अन्तिम व्यंजन को म् आदेश होता है; जैसे–साक्षात्–सक्खं, यत्–जं, तत्–तं।

3. कुछ स्थलों में अन्तिम व्यंजन को अ आदेश होता है; जैसे–शरद्–सरओ, भिषक्–भिसओ।

4. कुछ स्थलों में अन्तिम व्यंजन को स आदेश होता है, जैसे–दिक्–दिसा।

5. स्त्रीलिंग में अन्तिम व्यंजन हो तो उसे आ आदेश होता है, जैसे–सरित्–सरिआ, संपद्–संपआ।।

(2) संयुक्त व्यंजन

सरल व्यंजन द्वित्व होने पर उसे संयुक्त व्यंजन कहा जाता है।

जिन दो या दो से अधिक व्यंजनों के बीच में स्वर न हो तो उसे संयुक्त व्यंजन कहते हैं। प्राकृत में शब्द के प्रारम्भ में संयुक्त व्यंजन नहीं होते हैं। प्राकृत में भिन्न वर्गीय संयुक्त व्यंजन नहीं मिलता है। समान वर्गीय व्यंजनों के मेल से बने हुए संयुक्त व्यंजन

ही मिलते हैं। भिन्न वर्गीय संयुक्त व्यंजनों को समान वर्गीय व्यंजन के रूप में बदल दिया जाता है। उसके एक व्यंजन का लोप कर दूसरे को द्वित्व कर दिया जाता है।

क-ग-ट-ड-त-द-प-श-ष-स ≍क)(पामूर्ध्वं लुक् 2/77

क, ग, ट, ड, त, द, प, श, ष, स, जिह्वामूलीय ≍ क, उपध्मानीय)(प-ये संयोग में ऊर्ध्व स्थित हों तो इनका लोप हो जाता है।

सर्वत्र लबरामवन्द्रे 2/79

ऊर्ध्व, अधः स्थित ल, ब, र का लोप हो जाता है, वन्द्र शब्द को छोड़कर।

अधो म-न-याम् 2/78

संयोग के अन्त में स्थित म, न, य का लोप होता है।

अनादौ शेषादेशयोर्द्वित्वम् 2/89

पद के अनादि में रहे हुए शेष और आदेश को द्वित्व होता है।

द्वितीयतूर्ययोरुपरि पूर्वः 2/90

वर्ग के द्वितीय तथा चतुर्थ वर्ण को द्वित्व का प्रसंग आने पर द्वितीय वर्ण को वर्ग का प्रथम वर्ण तथा चतुर्थ वर्ण को वर्ग का तृतीय वर्ण हो जाता है।

यदि द्वित्त्व व्यंजन हकारयुक्त (महाप्राण) हो तो उसको द्वित्त्व कर उसके प्रथम रूप के हकार को हटा दिया जाता है तथा वर्ग का पहला और तीसरा वर्ण कर दिया जाता है, जैसे– दुग्धम्–दुद्धं, मूर्च्छा–मुच्छा, मूर्खः–मुक्खो।

क्ष्मा-श्लाघा-रत्नेन्त्यव्यञ्जनात् 2/101

क्ष्मा, श्लाघा और रत्न में अन्त्यव्यंजन से पूर्व अ होता है।

संयुक्त व्यंजनों में एक व्यंजन य, र, ल अनुस्वार या अनुनासिक हो तो उसे स्वरभक्ति के द्वारा अ, इ, ई, और उ में से किसी स्वर के द्वारा विभक्त कर सरल व्यंजन बना दिया जाता है, जैसे–रत्नम्–रयणं, गर्हा–गरिहा।

समास में शेष या आदेश व्यंजन को विकल्प से द्वित्व होता है, इसलिए समस्त पदों में संयुक्त व्यंजन विकल्प से पाए जाते हैं, जैसे–देवत्थुई–देवथुई।

क्षः खः क्वचित्तु छझौ 2/3

क्ष को ख होता है, कहीं-कहीं छकार और झकार भी हो जाता है।

जैसे–क्ष को ख, यक्षः-जक्खो।

संधि

सन्धानं सन्धिः। सम्यक् धीयते इति सन्धिः। वर्णानां समवायः सन्धिः। अर्थात् मिलने को सन्धि कहते हैं। जब किसी शब्द में दो वर्ण निकट आने पर मिलते हैं तो उनके मेल से उत्पन्न होने वाले विकार को संधि कहते हैं।

पदयोः संधिर्वा 1/5

संस्कृत (व्याकरण) में कही हुई सभी सन्धियां प्राकृत में दो पदों में विकल्प से होती हैं।

प्राकृत में संधि की व्यवस्था विकल्प से होती है, नित्य नहीं। संधि के तीन भेद हैं–

(1) स्वर संधि,

(2) व्यंजन संधि,

(3) अव्यय संधि।

(1) स्वर संधि

दो अत्यन्त निकट स्वरों के मिलने से जो ध्वनि में विकार उत्पन्न होता है, उसे स्वर-संधि कहते हैं। इसके पांच भेद हैं–1. दीर्घ, 2. गुण, 3. विकृत वृद्धि संधि, 4. ह्रस्व-दीर्घ और 5. प्रकृतिभाव संधि।

1. दीर्घ संधि

ह्रस्व या दीर्घ अ, इ और उ से उनका सवर्ण स्वर परे रहे तो दोनों के स्थान में विकल्प से सवर्ण दीर्घ होता है; यथा–

दंड + अहिसो = दंडाहीसो, दंड अहिसो

रमा + आरामो = रमारामो, रमा आरामो

विसम + आयवो = विसमायवो, विसम आयवो

रमा + अहीणो = रमाहीणो

मुणि + इणो = मुणीणो

गामणी + ईसरो = गामणीसरो

मुनि + ईसरो = मुणीसरो

गामणी + इणो = गामणीणो

भाणु + उवज्झाओ = भाणूवज्झाओ

भाणु + ऊसवो = भाणूसवो

बहू + उअरं = बहूअरं

कणेरु + ऊसिअं = कणेरूसिअं।

2. गुण संधि

अ या आ वर्ण से परे ह्रस्व या दीर्घ इ और उ वर्ण हो तो पूर्व-पर के स्थान में एक गुण आदेश होता है, यथा–

(क) वास + इसी = वासेसी (अ + इ = ए)

रामा + इअरो = रामेअरो (आ + इ = ए)

वासर + ईसरो = वासरेसरो (अ + ई = ए)

विलया + ईसो = विलयेसो (आ + ई = ए)

(ख) गूढ + उअरं = गूढोअरं (अ + उ = ओ)

रमा + उवचिअं = रमोवचिअं (आ + उ = ओ)

सास + ऊसासा = सासोसासा (अ + ऊ = ओ)

विज्जुला + ऊसुंभिअं = विज्जुलोसुंभिअं (आ + ऊ = ओ)

3. विकृत संधि

ए और ओ से पहले अ और आ हो तो उनका लोप हो जाता है, यथा–

णव + एला = णवेला

वण + ओलि = वणोलि

4. ह्रस्वदीर्घ विधान संधि

समस्त पदों में ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व होता है, यथा–

वारि + मई = वारीमई, वारिमई

वेणु + वणं = वेलूवणं, वेलुवणं

सिला + खलिअं = सिलखलिअं, सिलाखलिअं।

5. प्रकृतिभाव संधि

संधि कार्य के न होने को प्रकृतिभाव कहते हैं। प्राकृत में संस्कृत की अपेक्षा संधि-निषेध अधिक मात्रा में पाया जाता है। इस संधि के प्रमुख नियम निम्नांकित हैं–

न युवर्णस्यास्वे 1/6

इवर्ण और उवर्ण के आगे असवर्ण वर्ण (विजातीय) परे हो तो संधि नहीं होती है।

(क) इ और उ का विजातीय स्वर के साथ संधि कार्य नहीं होता, यथा–

पहावलि + अरुणो = पहावलिअरुणो

(ख) ए और ओ के आगे यदि कोई स्वर वर्ण हो तो उनमें संधि कार्य नहीं होता है, यथा–

वणे + अडइ = वणे अडइ

देवीए + एत्थ = देवीए एत्थ

स्वरस्योद्वृत्ते 1/8

जो व्यञ्जनसंपृक्तस्वर (व्यंजन से मिला हुआ स्वर) व्यंजन के लुप्त होने पर अवशिष्ट रहता है वह उद्वृत्त कहलाता है। उद्वृत्त स्वर परे होने पर स्वर की संधि नहीं होती है।

उद्वृत्त स्वर का किसी भी स्वर के साथ संधि कार्य नहीं होता है, यथा–

(क, ग, च, ज, त, द, प, य और व- इत्यादि व्यंजनों के लुक् होने पर शेष रहे हुए स्वर को उद्वृत्त स्वर कहते हैं।)

निसा + अरो = निसा अरो

रयणी + अरो = रयणी अरो

(घ) कहीं-कहीं होता भी है, जैसे–

कुंभ + आरो = कुम्भारो

सु + उरिसो = सूरिसो

(ङ) तिप् आदि प्रत्ययों के स्वरों के साथ भी संधि कार्य नहीं होता है; यथा–

होइ + इह = होइ इह

(च) किसी स्वर वर्ण के रहने पर उसके पूर्व के स्वर का लोप विकल्प से होता है, यथा-

तिअस + ईसो = तिअसीसो तथाा तिअसईसो

गअ + इंदो = गइंदो तथा गअइंदो।

(2) व्यंजन संधि

प्राकृत में व्यंजन संधि के अधिक नियम नहीं मिलते, क्योंकि अन्तिम हलन्त व्यंजन का लोप हो जाने से सन्धिकार्य का अवसर ही नहीं आता है। इस संधि के प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं-

अतो डो विसर्गस्य 1/37

संस्कृत सूत्र से (लक्षण से) उत्पन्न अकार से परे विसर्ग को डो आदेश होता है।

1. अ के बाद आये हुए संस्कृत विसर्ग के स्थान में उस पूर्व अ को 'ओ' हो जाता है।

अग्रतः > अग्गओ

मनः + शिला = मणोसिला, मणंसिला, मणासिला

मोनुस्वारः 1/23

2. पद के अन्त में रहने वाले मकार का अनुस्वार होता है, यथा–

गिरिम् > गिरिं

जलम् > जलं।

3. मकार से परे स्वर रहने पर विकल्प से अनुस्वार होता है, यथा–

उसभम् + अजिअं = उसभंअजिअं, उसभमजिअं।

4. बहुलाधिकार रहने से हलन्त अन्त्य व्यंजन को भी मकार होकर अनुस्वार होता है, यथा–

साक्षात् > सक्खं,

यत् > यं/जं।

ङञणनो व्यञ्जने 1/25

ङ, ञ, ण और न के स्थान में व्यञ्जन परे होने पर अनुस्वार हो जाता है। यथा–

पङ्क्तिः > पंती

विन्ध्य > विंझो

कञ्चुकः > कंचुओ।

(3) अव्यय संधिः

प्राकृत में अव्यय पदों में यह संधि पाई जाती है तथा यह संधि दो अव्यय पदों में होती है। इसके प्रमुख नियम निम्नलिखित हैं–

1. पद से परे आये हुए अपि अव्यय के अ का लोप होता है। लोप होने के बाद अपि का 'प' यदि स्वर से परे हो तो 'व' हो जाता है, यथा–

केण + अपि = केणवि, केणावि

किं + अपि = किंपि, किमवि।

2. पद के उत्तर में रहने वाले इति अव्यय के आदि इकार का लोप होता है और स्वर से परे रहने वाले तकार को द्वित्व होता है, यथा–

किं + इति = किंति

जं + इति = जंति।

तह + इति = तहत्ति

3. त्यद् आदि सर्वनामों से पर में रहने वाले अव्ययों तथा अव्ययों से पर में रहने वाले त्यदादि के आदि स्वर का लुक् बहुलता से होता है, यथा–

एस + इमो = एसमो

अम्हे + एत्थ = अम्हेत्थ।

विभक्ति एवं कारक

संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में विभक्ति प्रत्ययों का प्रयोग आवश्यक है। विभक्ति से ही पता चलता है कि शब्द की संख्या क्या है, उसका कारक क्या है। प्राकृत में छह कारक एवं छह विभक्तियां होती हैं। चतुर्थी एवं षष्ठी विभक्ति को एक मानने से सात के स्थान पर छह विभक्तियों के प्रत्यय ही प्रयुक्त होते हैं, जबकि अर्थ सात विभक्तियों के ग्रहण किये जाते हैं। संज्ञा, सर्वनाम और विशेषण शब्दों में लगने वाले प्रत्यय विभक्ति कहलाते हैं। क्रिया का जो उत्पादक हो, क्रिया से जिसका सम्बन्ध हो अथवा क्रिया की उत्पत्ति में जो सहायक हो, उसे कारक कहा गया है। प्राकृत में प्रयोग के अनुसार कारक और विभक्तियों के क्रम बदलते रहते हैं। फिर भी सामान्यतया कारक और विभक्ति के सम्बन्ध इस प्रकार हैं–

कारक	विभक्ति	चिन्ह
1. कर्ता	प्रथमा	है, ने
2. कर्म	द्वितीया	को (को रहित भी)
3. साधन (करण)	तृतीया	से, के द्वारा
4. सम्प्रदान	चतुर्थी	के लिए
5. अपादान	पंचमी	से (विलग होने में)
6. सम्बन्ध	षष्ठी	का, के, की
7. अधिकरण	सप्तमी	में, पर

1. कर्त्ता कारक प्रथमा–है, ने

शब्द के अर्थ, लिंग, परिमाण, वचन मात्र को बतलाने के लिए शब्द संज्ञा, सर्वनाम आदि में प्रथमा विभक्ति होती है। प्रथमा विभक्ति वाला शब्द वाक्य में प्रयुक्त क्रिया का कर्त्ता होता है। उसके बिना क्रिया का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। अतः कर्त्ता कारक शब्द क्रिया की सार्थकता बताता है, जैसे–महावीरो गामं गच्छइ, पोग्गलो अचेयणो अत्थि। यहाँ गच्छ क्रिया का कर्त्ता महावीर है, अत्थि क्रिया का मूल सम्बन्ध पोग्गल से है। महावीरो प्रथमा विभक्ति में होने से सूचित करता है कि महावीर पुल्लिंग संज्ञा शब्द है और एकवचन है।

2. कर्म कारक द्वितीया–को

जो कर्त्ता का अभीष्ट कार्य हो, क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध हो उसको व्यक्त करने वाले शब्द में कर्म संज्ञा होती है। कर्म में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। सामान्यतया किसी भी कर्त्ता-क्रिया वाले वाक्य के अन्त में 'किसको' प्रश्न क्रिया से जोड़ने पर कर्म की पहिचान हो जाती है। जैसे–'राम फल खाता है' यहां किसको खाता है? प्रश्न करने पर उत्तर में फल शब्द सामने आता है। अतः फल कर्मसंज्ञक है। इसका द्वितीया का रूप 'फलं' वाक्य में प्रयुक्त होगा। इस तरह के प्राकृत वाक्य हैं–

कुम्हारो घडं करइ	–	कुम्हार घड़ा बनाता है।
सो पडं ण करइ	–	वह पट (कपड़ा) नहीं बनाता है।
णाणी तवं तवइ	–	ज्ञानी तप करता है
सावगो वयं गिण्हइ	–	श्रावक व्रत को ग्रहण करता है।

सामान्यतः कर्म में द्वितीया विभक्ति के प्रयोग होने के साथ प्राकृत में अन्य विभक्तियों के प्रसंगों में भी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है।

1. 'विना' के साथ–अणज्जो अणज्जभासं विणा गाहेउं ण सक्कइ।

–अनार्य अनार्य भाषा के बिना ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता। (तृतीया के स्थान पर द्वितीया)

2. 'गमन' के अर्थ में–सो उम्मग्गं गच्छन्तं मग्गे ठवेइ।

–वह उन्मार्ग में जाते हुए को मार्ग में स्थापित करता है। (सप्तमी के स्थान पर द्वितीया)

3. 'श्रद्धा' के योग में–मोक्खं असद्धहंतस्स पाढो गुणं ण करेइ

मोक्ष पर श्रद्धा न करने वाले का कोई (शास्त्र) पाठ लाभ नहीं करता। (सप्तमी के स्थान पर द्वितीया)

4. कभी-कभी प्रथमा के स्थान पर द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है–

चउवीसं पि जिणवरा–चौबीस ही जिनवर

5. कभी-कभी सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त होती है–

विज्जुज्जोयं भरइ रत्तिं– रात में विद्युत्-उद्योत को स्मरण करती है।

6. द्विकर्मक क्रियाओं के योग में मुख्य कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है तथा गौण कर्म में करण, अपादान, अधिकरण, सम्प्रदान, संबंध आदि विभक्तियों के होने पर भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा-

माणवअं पहं पुच्छइ- लड़के से रास्ता पूछता है।

3. करण कारक — तृतीया–के द्वारा, साथ, से

क्रिया-फल की निष्पत्ति में सबसे अधिक निकट सम्पर्क रखने वाले साधन को करण कहते हैं। कार्य की सिद्धि में कई सहायक साधन होते हैं। अधिक सहायक साधन में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होगा। प्राचीन साहित्य में विभिन्न अर्थों में तृतीया विभक्ति का प्रयोग देखने को मिलता है, यथा–

1. प्रकृति अर्थ में – सहावेण सुंदरो लोओ – स्वभाव से सुंदर लोक।
2. अंग विकार में – सो णेत्तेण हीणो अत्थि – वह नेत्र से हीन है।
3. हेतु अर्थ में – पुण्णेण दंसणं हवइ – पुण्य से दर्शन होता है।
4. सह अर्थ में – सा पिउणा सह गच्छइ – वह पिता के साथ जाता है।

अन्य उदाहरण वाक्य–

सीसो साहुणा सह पढइ – शिष्य साधु के साथ पढ़ता है।

सा माआए सह गच्छइ – वह माता के साथ जाती है।

पुरिसो जुवईए सह वसइ – आदमी युवती के साथ रहता है।

णयरेण सामिद्धी हवइ – नगर से समृद्धि होती है।

सत्थेण पंडिओ होइ – ग्रन्थ से पंडित होता है।

4. सम्प्रदान कारक चतुर्थी–के लिए, को

जिसके लिए कोई कार्य किया जाए या कोई वस्तु दी जाए तो उस व्यक्ति या वस्तु संज्ञा/सर्वनाम में सम्प्रदान कारक होता है। सम्प्रदान कारक वाले शब्दों में चतुर्थी विभक्ति के प्रत्ययों का प्रयोग होता है, जैसे-

सावगो समणस्स आहारं देइ	–	श्रावक श्रमण के लिए आहार देता है।
निवो माहणस्स धणं देइ	–	राजा ब्राह्मण को धन देता है।
गुरू बालअस्स पोत्थअं देइ	–	गुरु बालक के लिए पुस्तक देता है।

इस प्रकार की वस्तु देने में श्रद्धा, कीर्ति, उपकार आदि का भाव दाता के मन में होता है। सम्प्रदान कारक अनेक अर्थों में प्रयुक्त होता है, यथा–

णमो अरिहंताणं	–	अरिहंतों को नमस्कार।
पुत्तस्स दुद्धं रोयइ	–	पुत्र को दूध अच्छा लगता है।
जणओ पुत्तस्स कुज्झइ	–	पिता पुत्र पर क्रोधित होता है।
साहू णाणस्स झाइ	–	साधू ज्ञान के लिए ध्यान करता है।
निवो कवीणं धणं देइ	–	राजा कवियों को धन देता है।
साहूण णाणं हिअं अत्थि	–	साधुओं के लिए ज्ञान हितकर है।
माआणं णमो	–	माताओं के लिए नमस्कार है।

5. अपादान कारक पंचमी–से (विलग)

एक दूसरे से अलग होने को अपाय कहते हैं। जैसे–मोहन घोड़े से गिरता है, पेड़ से पत्ता गिरता है आदि। इस अलग होने की क्रिया को अपादान कहते हैं। अपादान कारक में पंचमी विभक्ति के प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। यथा–

मोहणो अस्सत्तो पडइ, रुक्खत्तो पत्तं पडइ आदि।

पंचमी विभक्ति का प्रयोग कतिपय धातुओं, अर्थों एवं प्रसंगों में भी किया जाता है। उनमें से कुछ प्रमुख हैं–

सो चोरओ बीहइ	–	वह चोर से डरता है।
जोद्धा चोरत्तो रक्खइ	–	योद्धा चोर से रक्षा करता है।

मुणी उवज्झायओ पढइ – मुनि उपाध्याय से (उपयोग पूर्वक) पढ़ता है।

बीजत्तो अंकुरो जायइ – बीज से अंकुर उत्पन्न होता है।

धणत्तो विज्जा सेट्ठा – धन से विद्या श्रेष्ठ है।

6. सम्बन्ध कारक षष्ठी—का, के, की

जहाँ सम्बन्ध व्यक्त करना हो वहां षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है। इसके साथ ही अन्य प्रसंगों में, विभिन्न शब्दों के योग में भी षष्ठी होती है; यथा–

इमो जिणस्स उवदेसो अत्थि – यह जिन का उपदेश है।

मुणिणो णाणं वड्ढइ – मुनि का ज्ञान बढ़ता है।

ते साहुस्स सम्माणं करंति – वे साधु का सम्मान करते हैं।

पुत्तो माआअ सुमरइ – पुत्र माता को स्मरण करता है।

7. अधिकरण कारक सप्तमी—में, पर

वार्तालाप के वाक्य प्रयोग में कर्त्ता एवं कर्म के माध्यम से क्रिया का जो आधार होता है, उसे अधिकरण कहते हैं। यह आधार अनेक प्रकार का हो सकता है। सभी आधारों में सप्तमी विभक्ति के प्रत्ययों का प्रयोग शब्द के साथ किया जाता है, इसलिए इसको अधिकरण कारक कहते हैं। सामान्यतया निम्न आधारों में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है–

रुक्खे पक्खिणो वसंति – वृक्ष पर पक्षी बसते हैं।

आसणे उवरि पोत्थअं अत्थि – आसन के ऊपर पुस्तक है।

तिलेसु तेलं अत्थि – तिलों में तेल है।

हियए करुणा अत्थि – हृदय में करुणा है।

धम्मे अहिलासा अत्थि – धर्म में अभिलाषा है।

मोक्खे इच्छा अत्थि – मोक्ष में इच्छा है।

छत्तेसु जयकुमारो णिउणो – छात्रों में जयकुमार निपुण है।

मम समणेसु आयरो अत्थि – मेरा श्रमणों में आदर है।

प्राकृत में सप्तमी विभक्ति का प्रयोग अन्य विभक्तियों के लिए भी कभी-कभी किया जाता है। कतिपय उदाहरण यहां द्रष्टव्य है–

सुत्तं/सुत्तम्मि जाणमाणो	–	सूत्रों को जानने वाला
सुयाणि/सुएसु वेदेऊण	–	श्रुतों को जानकर
जीवे (जीवेण) कम्मं बद्धं	–	जीव के द्वारा कर्म बांधा गया है।
सुत्तेण सह सूई ण णस्सइ	–	सूत्र (धागे) के साथ सुई नष्ट नहीं होती।
जे दंसणेसु भट्ठा	–	जो सम्यग्दर्शन से वंचित हैं।
जे णाणे भट्ठा	–	जो ज्ञान से रहित हैं।

प्राकृत में विभक्ति का स्वरूप निम्नलिखित है–

अकारान्त पुल्लिंग विभक्ति के प्रत्यय

	एकवचन		बहुवचन	
	संस्कृत प्रत्यय	प्राकृत प्रत्यय	संस्कृत प्रत्यय	प्राकृत प्रत्यय
प्रथमा	सु (सि)	ओ	जस्	विभक्ति का लोप, आ
द्वितीया	अम्	अनुस्वार (ं)	शस्	विभक्ति का लोप, ए
तृतीया	य	ए+ण, णं (णा)	भिस्	ए + हि, हिं, हिँ
चतुर्थी	ङे		भ्यस्	
पंचमी	ङसि	त्तो, ओ, हि, हिंतो	भ्यस्	त्तो, ओ, उ, हि, हिंतो, सुंतो
षष्ठी	ड.स्	स्स	आम्	आ + ण, णं
सप्तमी	ङि	ए, म्मि	सुप्	ए + सु, सुं
सम्बोधन	ए + सु	लोप या प्रथमा की तरह	जस्	प्रथमा की तरह

शब्द रूप

प्राकृत में दो तरह के शब्द होते हैं–एक है स्वरान्त और दूसरा है व्यञ्जनान्त।

स्वरान्त शब्द अ, आ, इ, ई, उ, ऊ हैं क्योंकि एकारान्त तथा ओकारान्त शब्द प्राकृत में नहीं होते हैं। इसलिए केवल अकारान्त, आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त तथा ऊकारान्त शब्द ही प्राकृत में मिलते हैं।

प्राकृत में ऋ, ॠ और ऌ नहीं हैं इसलिए ऋकारान्त शब्द प्राकृत में अर, आर और कभी-कभी उकार भी हो जाते हैं।

प्राकृत में व्यंजनान्त शब्द नहीं होते, इसलिए व्यंजनान्त शब्द भी स्वरान्त हो जाते हैं।

नोट- शब्द-रूप परिशिष्ट में उल्लिखित हैं।

विशेषण एवं क्रिया-विशेषण

जो शब्द अर्थवान हो, उसे नाम कहते हैं, जैसे–रामो, महावीरो। जिस नाम के पीछे विशेषण जुड़ जाता है, वह नाम विशेष्य बन जाता है। विशेषण द्वारा जिनकी विशेषता जानी जाती है, उसे विशेष्य कहते हैं, जैसे–उत्तमो साहू झाइ। इसमें 'साहू' विशेष्य है और 'उत्तमो' विशेषण।

इन विशेषण शब्दों के सभी विभक्तियों के रूप, लिंग, विशेष्य के अनुसार होते हैं, जैसे–

सेट्ठो	पुत्तो
सेट्ठा	धूआ
उत्तमे	सीसे।

नाम और क्रिया की अवस्था में भेद दिखलाने वाले शब्दों को विशेषण कहते हैं।

विशेषण के दो भेद हैं–

विशेषण

नाम विशेषण	क्रिया विशेषण
1. गुणवाचक	(जिस शब्द से क्रिया की विशेषता
2. तुलनात्मक	जानी जाती है, उसे क्रिया-विशेषण
3. संख्यावाचक	कहते हैं, जैसे–मंदं गच्छइ, कूरं पासइ।)

प्रकार एवं क्रमवाचक विशेषण

1. गुणवाचक विशेषण–जहां गुणवाचक शब्द विशेषण बनते हैं, उसे गुणवाचक

विशेषण कहते हैं, जैसे–

प्रथमा एकवचन– उत्तमो साहू झाइ।
उत्तमं कविं सो नमइ।

प्रथमा बहुवचन– उत्तमा साहुणो झायन्ति।
उत्तमा कविणो ते नमन्ति।

2. तुलनात्मक विशेषण–

तुमं ममत्तो कणीअसो अत्थि।
मोहणो तस्स कणिट्ठो पुत्तो अत्थि।

3. संख्यावाचक–जहां संख्यावाचक शब्द विशेषण बनता हो, उसे संख्यावाचक विशेषण कहते हैं, जैसे–एगो छत्तो पढइ। एगा बालिआ गच्छइ।

धातुरूप

क्रियावाची शब्दों को धातु कहते हैं।

धातु साधारणतया एक स्वर की होती है, जैसे–कर्, मण् आदि।

शब्द रूपों की तरह धातु के रूपों में भी द्विवचन नहीं होता।

प्राकृत में गणभेद (धातुओं के वर्गीकरण) की व्यवस्था नहीं की जाती है।

अकारान्त धातुओं को छोड़कर शेष धातुओं में आत्मनेपदी और परस्मैपदी का भेद नहीं माना जाता है। किन्तु अदन्त या अकारान्त धातुएं उभयपदी होती हैं। आकारान्त धातु में परस्मैपदी रूपवाली ही होती हैं।

प्राकृत में व्यंजनान्त धातुएं नहीं होतीं। व्यंजनान्त धातुओं से अ विकिरण जोड़ा जाता है, जैसे–हस् + अ = हस, कर् + अ = कर।

अकारान्त को छोड़कर शेष धातुओं में अ विकरण विकल्प से जुड़ता है, जैसे, हो–होअइ, ठाइ–ठाअइ।

प्राकृत में धातु द्वि-स्वर युक्त भी हो सकती है, जैसे–पेक्खइ।

प्राकृत में तीन पुरुष और दो वचन अर्थात् एकवचन और बहुवचन का प्रयोग होता है। (द्विवचन का प्रयोग नहीं होता।)

काल के धातु प्रत्यय

	प्रथम पुरुष		मध्यम पुरुष		उत्तम पुरुष	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
वर्तमानकाल	इ, ए	न्ति, न्ते, इरे	सि, से	इत्था ह	मि	मो, मु, म

भूतकाल	ईअ, सी, ही, हीअ					
भविष्यकाल	हिइ	हिन्ति, हिन्ते	हिसि	हित्था	स्सं स्सामि	स्सामो स्सामु
	हिए	हिइरे	हिसे	हिइ	हामि हिमि	स्साम हामो
अनुज्ञा.	उ	न्तु	सु, हि, इज्जसु इज्जहि	ह	मु	मो
विधिलिंग	ज्ज	ज्जा	ज्ज	ज्जा	ज्ज	ज्जा
क्रियातिपत्ति	ज्ज	ज्जा	ज्ज	ज्जा	ज्ज	ज्जा

नोट- कुछ धातुओं के रूप परिशिष्ट में उल्लिखित हैं—

सर्वनाम

संज्ञा के स्थान पर जो आता है, उसे सर्वनाम कहते हैं, यथा—दीवायणो तत्थ वसइ। सो य अइदुक्करं बालतवमणुचरइ। अर्थात् वहां द्वीपायन रहता है और वह अत्यन्त कठोर बालतप करता है। उक्त वाक्य में 'सो' 'दीवायणो' के स्थान पर आया है। वाक्यों में सर्वनाम का प्रयोग करने से वाक्य सुन्दर बन जाते हैं।

जिस संज्ञा के स्थान पर या उसके साथ जो सर्वनाम आता है, उसमें उसी के लिंग वचन होते हैं, यथा—

राम का नौकर क्षत्रियपुत्र था। वह दुर्बल होने पर भी निर्भय था = रामस्स भिच्चो खत्तियपुत्तो अत्थि। सो दुब्बलो वि निब्भओ अत्थि। यहां 'खत्तियपुत्त' पुल्लिंग और एकवचन है, अतः इसके स्थान पर प्रयुक्त होने वाला सर्वनाम 'सो' भी पुल्लिंग और एकवचन है।

अनुवाद करने में कर्त्ता के अनुसार क्रिया का वचन और पुरुष होता है। कर्त्ता जब उत्तम पुरुष First person में रहता है तो क्रिया भी उत्तम पुरुष की होती है। कर्त्ता जब मध्यम पुरुष Second person में रहता है तो क्रिया मध्यम पुरुष की और कर्त्ता जब प्रथम पुरुष Third person में रहता है तो क्रिया प्रथम पुरुष की होती है।

'तुम' और 'मैं' बोधक शब्दों के अतिरिक्त शेष सभी शब्द प्रथम पुरुष Third person होते हैं।

शब्दरूपावली के नियमों के आधार पर संस्कृत के समान प्राकृत में सर्वनामों को सर्वादि–सर्व, विश्व, उभय, एक, एकतर; अन्यादि–अन्य, इतर, कतर, कतम; यदादि–यद्, तद्, एतद्, किम्; पूर्वादि–पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व एवं इदमादि–इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्, भवत् वर्गों में विभक्त किया जा सकता है।

पास की वस्तु या व्यक्ति के लिए इम (इदम्); अधिक पास की वस्तु या व्यक्ति के लिए एअ (एतद्); सामने के दूरवर्ती पदार्थ या व्यक्ति के सम्बन्ध में अमु (अदस्) और परोक्ष–जो वक्ता के सामने नहीं हो, पदार्थ या व्यक्ति के लिए स (तद्) शब्द का व्यवहार किया जाता है।

नोट—सर्व शब्द के रूप परिशिष्ट में उल्लिखित हैं।

अव्यय

अव्यय पद हमेशा सभी विभक्तियों, सभी वचनों और सभी लिंगों में अपरिवर्तित होते हैं। कुछ अव्यय तो संस्कृत-अव्ययों के स्वर-व्यञ्जन परिवर्तन के द्वारा बने हैं तथा कुछ स्वतन्त्र अव्यय हैं जो संस्कृत में नहीं मिलते हैं।

अकारादि क्रम से प्रमुख अव्यय सूची–

अ (च) और
अइ (अति) अतिशय
अइ (अयि) संभावना
अइरं (अचिरम्) शीघ्र
अइरेण (अचिरेण)
अईव (अतीव) अत्यधिक
अओ (अतः) इसलिए
अकट्टु (अकृत्वा) नहीं करके
अग्गओ (अग्रतः) आगे
अग्गे (अग्रे) पहले
अण्णहा (अन्यथा) विपरीत
अण्णया (अन्यदा) दूसरे समय
अणंतरं (अनन्तरम्) पश्चात्, विना
अप्पणो, सयं (आत्मनः, स्वयम्) खुद
अभिक्खणं (अभीक्षणम्) बारम्बार
अहिओ (अभितः) चारों ओर
अम्मो–आश्चर्य
अरे–रतिकलह
अलं (अलम्) बस, पर्याप्त
अलाहि-निवारण

अच्चत्थं (अत्यर्थम्) अधिक अर्थ

अज्ज (अद्य) आज

अण, णाइं (अन = नञ्) निषेध

अण्णमण्णं, अण्णोण्णं (अन्योन्यम्) आपस में

अव्वो–सूचना, दुःख, संभाषण, अपराध, विस्मय, आनन्द, आदर, भय, खेद, विषाद, पश्चात्ताप

अवस्सं (अवश्यम्) अवश्य

उवरिं (उपरि) ऊपर

पि, वि, अवि (अपि) प्रश्न, सम्भावना समुच्चय

असइं (असकृत्) बार-बार

अह (अथ) पश्चात्

अह, अहे (अधस्) नीचे

अहत्ता हेट्ठा (अधस्तात्) नीचे

अहइं (अथ किम्) और क्या

अहव, अहवा, (अथवा) पक्षान्तर

अहुणा (अधुना) इस समय

आम् (ओम्) स्वीकृति सूचक

इओ (इतः) यहां से

इयाणिं (इदानीम्) इस समय

ओ–सूचना, पश्चात्ताप

कओ (कुतः) कहाँ से

कत्थइ (कुत्रचित्) कहीं

इव, मिव, पिव, विव, व्व, व, विअ (इव) सादृश्य

इह (इह) यहाँ

इहरा, इयरहा (इतरथा) अन्यथा

ईसिं, ईसि (ईषत्) थोड़ा

उअ–देखो

ऊअ (उत्) विकल्प, प्रश्न

उच्चअ (उच्चैः) उन्नत

एअं (एतत्) यह

एकइआ, एक्कइआ, एक्कया, एगइया, एगदा (एकदा) एक समय

एगयओ (एकैकतः) एक-एक

एतावता, एयावया (एतावता) इतना

एत्थं, एत्थ, इत्थ (अत्र) यहाँ

एव (एव) ही

एवं (एवम्) इस तरह

एमेव, एवमेव (एवमेव) इसी तरह

जेव, ज्जेव, ज्जेव्व, जेव्व (एव) निश्चय

झत्ति (झटिति) शीघ्र

ण (न) निषेध

णवि–वैपरीत्य

णं (नं) वाक्यालंकार

णमो (नमः) नमस्कार

णवर, णवरं–केवल

णवरि—अनन्तर

कल्लं (कल्यम्) कल (आने वाला)
कह, कहं (कथम्) कैसे
कहि, कहिं (कुत्र) कहाँ
कया (कदा) कब, किस समय
किणा, किण्णा, किणो (किन्तु) प्रश्न
किर, किल, इर, हिर (किल) निश्चय
केवच्चिरं, केवच्चिरेण (कियच्चिरम्
कियच्चिरेण) कितनी देर से
केवलं (केवलम्) सिर्फ
खलु, खु, हु (खलु) निश्चय, वितर्क,
संभावना, विस्मय
चिअ, च्च, चेअ, जेव, ज्जेव, ज्जेव्व,
जेव्व (एव) निश्चय ही
जइ (यदि) जो
जओ (यतः) क्योंकि
जत्थ (यत्र) जहाँ
जह, जहा (यथा) जैसे
जहेव (यथैव) जिस प्रकार से
जं (यत्) जो, क्योंकि
जाव (यावत्) जब तक
जे, इ, र–पादपूरक
तिरियं (तिर्यक्) तिरछा
तीअं (अतीतम्) बीता हुआ
उ तु (तु) किन्तु
दर–आधा, थोड़ा
दिवारत्तं (दिवारात्रम्) दिन रात

णाणा (नाना) अनेक
णूणं, णूण (नूनम्) निश्चय
णो (नो) निषेध
तए, ताहे (तदा) तब
तओ, तत्तो, ततो (ततः) इसके बाद
तत्थ, तहिं, तहि (तत्र) वहां
तह, तहा (तथा) उस तरह
परसुवे (परश्वः) परसों आने वाला
परिओ (परितः) चारों ओर
परोप्परं, परुप्परं (परस्परम्) आपस में
पायो, पाओ (प्रायः) बहुधा
पुण, पुणो (पुनः) फिर
पुणरुत्तं–किए हुए को बारंबार करना
पुणरवि (पुनरपि) फिर भी
पुरओ (पुरतः) आगे, सम्मुख
पुरत्था (पुरस्तात्) आगे, सम्मुख
पुरा (पुरा) पहले
पुहं, पिहं (पृथक्) अलग
पेच्च (प्रेत्य) परलोक में
बहिं (बहिः) बाहर
भुज्जो (भूयः) बार-बार
मणयं (मनाक्) थोड़ा
मणे, मण्णे (मन्ये) वितर्क
मुसा (मृषा) झूठ
समं (समम्) साथ
सम्मं (सम्यक्) भली प्रकार

दुहओ, दुहा (द्विधा) दो प्रकार
धुवं (ध्रुवं) निश्चय
णिच्चं, निच्चं (नित्यम्) हमेशा
पइदिणं (प्रतिदिनम्) प्रतिदिन
पगे–प्रातःकाल में
पच्छा (पश्चात्) पीछे
पडिरूवं (प्रतिरूपम्) समान
परज्जु (परेद्युः) कल, दूसरे दिन
परं (परम्) परन्तु
परंमुहं (पराङ्मुखम्) विमुख
मुहु (मुहुः) बार-बार
मा (मा) निषेध
य (च) और
रे–संभाषण
लहु (लघु) शीघ्र
देव्वे–भय, वारण, विषाद, आमन्त्रण
सइ (सदा) सदा
सक्खं (साक्षात्) प्रत्यक्ष
सद्धिं (सार्धम्) साथ
सयं (स्वयम्) स्वयं
सया (सदा) हमेशा
सव्वओ (सर्वतः) सभी ओर
सह (सह) साथ
सहसा (सहसा) अचानक
सिय, सिअ (स्यात्) कथञ्चित्
सुवे (श्वः) कल (आने वाला)
सू–निन्दासूचक
हरे (अरे) आक्षेप, रतिकलह, संभाषण
हला–सखी के लिए सम्बोधन
हद्धि (हा धिक्!) निर्वेद, खिन्नता
हन्दि–विषाद, पश्चात्ताप आदि
हु, खु–निश्चय, वितर्क, संभावना, विस्मय
वेव्व–आमन्त्रण
व्व, व, विअ (इव) समान
सइ (सकृत्) एक बार
सज्जो (सद्यः) शीघ्र
सणिअं (शनैः) धीरे

अव्ययों के कुछ प्रकार

(1) समुच्चय बोधक–एक वाक्य को दूसरे वाक्य से जोड़ने वाले। जैसे–

क. संयोजक–य, अह, अहो (अथ), उद, उ (तु), किंच आदि।

ख. वियोजक–वा, किंवा, तु, किंतु आदि।

ग. शर्तसूचक–जइ, चेअ, णोचेअ (नोचेत्), जइवि, तहवि, जदि आदि।

घ. कारणार्थक–हि, तेण आदि।

ङ. प्रश्नार्थक–उद, किं, किमुद, णु आदि।

च. कालार्थक–जाव, ताव, यदा, तदा, कदा आदि।

(2) मनोविकार सूचक–मन के भावों के बोधक। जैसे–

क. अव्वो–दुःख, विस्मय, आदर, भय, पश्चात्ताप आदि।

ख. हं–क्रोध।

ग. हन्दि–विषाद, पश्चात्ताप, विकल्प, निश्चय, सत्य, ग्रहण आदि।

घ. वेव्वे–भय, वारण, विषाद।

ङ. हुं, खु–वितर्क, संभावना, विस्मय आदि।

च. ऊ–आक्षेप, गर्हा, विस्मय आदि।

छ. अम्मो, अम्हो–आश्चर्य।

ज. रे, अरे, हरे–रतिकलह।

झ. हद्धी–निर्वेद।

उवसग्ग (उपसर्ग)

जो अव्यय क्रिया के पहले जुड़कर उसके अर्थ में वैशिष्ट्य या परिवर्तन करते हैं, उन्हें उपसर्ग कहते हैं। जैसे–हरइ (हरति=ले जाता है), अवहरइ (अपहरति=अपहरण करता है), आहरइ (आहरति=लाता है), पहरइ (प्रहरति=प्रहार करता है), विहरइ (विहरति=विहार करता है) आदि।

संस्कृत के 22 उपसर्गों में से 'निस्' का अन्तर्भाव 'निर्' में और 'दुस्' का अन्तर्भाव 'दुर्' में करके प्राकृत में मूलतः 20 उपसर्ग हैं, जो स्वर-व्यंजन परिवर्तन से कई रूपों में मिलते हैं। जैसे–प (प्र), परा (परा), ओ-अव (अप), सं (सम्), अणु अनु (अनु), ओ अव (अव), नि नी ओ (निर्), दु दू (दुर्), अहि, अभि (अभि), वि (वि), अहि अधि (अधि), सु सू (सु), उ (उत्), अइ अति (अति), णि नि (नि), पडि पइ परि (प्रति), परि पलि (परि), पि वि अवि (अपि), ऊ ओ उव (उप), आ (आङ्)।

नोट–अप, अव और उप के स्थान पर 'ओ' विकल्प से होता है। उप के स्थान पर 'ऊ' भी होता है। अपि के अ का लोप भी विकल्प से होता है। स्वर के बाद में आने पर 'पि' को 'वि' हो जाता है। जैसे–केण वि, केणावि; तं पि, तमवि। 'माल्य' शब्द के साथ 'निर्' उपसर्ग को 'ओ' तथा 'स्था' धातु के साथ 'प्रति' उपसर्ग को 'परि' आदेश विकल्प से होते हैं। जैसे–निर्माल्यम् > ओमालं, निम्मल्लं। प्रतिष्ठा < परिट्ठा, पइट्ठा।

अर्थ और प्रयोग

(1) प (प्रकर्ष)–पभासेइ (प्रभाषते)।

(2) परा (विपरीत)–पराजिअइ (पराजयते)।

(3) ओ, अव (दूर)–ओसरइ, अवसरइ (अपसरति)।

(4) सं (अच्छी तरह)–संखिवइ (संक्षिपति)।

(5) अणु, अनु (पीछे या साथ)–अणुगमइ (अनुगच्छति), अणुमई (अनुमतिः)।

(6) ओ, अव (नीचे, दूर, अभाव)–ओआसो, अवयासो (अवकाशः), ओअरइ (अवतरति)।

(7) ओ, नि, नी (निषेध, बाहर, दूर)–निग्गओ (निर्गतः), नीसहो (निस्सहः), ओमालं, निम्मल्लं (निर्माल्यम्)।

(8) दु, दू (कठिन, खराब)–दुन्नयो (दुर्नयः), दूहवो (दुर्भगः)।

(9) अहि, अभि (ओर)–अहिगमणं (अभिगमनम्), अभिहणइ (अभिहन्ति)।

(10) वि (अलग होना, बिना)–विणओ (विनयः), विकुब्बइ (विकुर्वति)।

(11) अहि, अधि (ऊपर)–अहिरोहइ (अधिरोहति)।

(12) सु, सू (सुन्दर, सहज)–सुअरं (सुकरम्), सूहवो (सुभगः)।

(13) उ (ऊपर)–उग्गच्छइ (उद्गच्छति), उग्गओ (उद्गतः)।

(14) अइ, अति (बाहुल्य, उल्लंघन)–अइसओ अतिसओ (अतिशयः), अच्चंतं (अत्यन्तम्)।

(15) णि, नि (अन्दर, नीचे)–णियमइ (नियमति), निविसइ (निविशते)।

(16) पडि, पइ, परि (ओर, उलटा)–पडिआरो (प्रतिकारः), परिट्ठा, पइट्ठा (प्रतिष्ठा)।

(17) परि, पलि (चारों ओर)–परिवुडो (परिवृत्तः), पलिहो (परिघः)।

(18) पि, वि, अवि (भी, निकट, प्रश्न)–किमवि, किं पि (किमपि), को वि (कोऽपि)।

(19) ऊ, ओ, उव (निकट)–उवासणा (उपासना), ऊआसो; ओआसो, उवआसो (उपवासः), ऊज्झाओ, ओज्झाओ, उवज्झाओ (उपाध्यायः)।

(20) आ (तक)–आसमुद्दं (आसमुद्रम्)।

वाक्य रचना

(क) क्रियारूप (वर्तमान काल)

पढ (क्रिया) + प्रत्यय

उत्तम पुरुष :

एकवचन

अहं पढामि	=	मैं पढता हूँ।
अहं खेलामि	=	मैं खेलता हूँ।
अहं चलामि	=	मैं चलता हूँ।

बहुवचन

अम्हे पढामो	=	हम पढते हैं।
अम्हे खेलामो	=	हम खेलते हैं।
अम्हे चलामो	=	हम चलते हैं।

मध्यम पुरुष :

एकवचन

तुमं पढसि	=	तुम पढते हो।
तुमं खेलसि	=	तुम खेलते हो।
तुमं चलसि	=	तुम चलते हो।

बहुवचन

तुम्हे पढित्था	=	तुम सब पढते हो।
तुम्हे खेलित्था	=	तुम सब खेलते हो।
तुम्हे चलित्था	=	तुम सब चलते हो।

अन्य पुरुष :

एकवचन

सा पढइ	=	वह पढती है।
मित्तं पढइ	=	मित्र पढता है।
बालो पढइ	=	बालक पढता है।

बहुवचन

ताओ पढन्ति	=	वे पढती हैं।
मित्ताणि पढन्ति	=	मित्र पढते हैं।
बाला पढन्ति	=	बालक पढते हैं।

(ख) क्रियारूप (भूत काल)

पढ (क्रिया) + ईअ = पढीअ

उत्तम पुरुष :

एकवचन

अहं पढीअ	=	मैंने पढ़ा।
अहं खेलीअ	=	मैंने खेला।
अहं चलीअ	=	मैं चला।

बहुवचन

अम्हे पढीअ	=	हमने पढ़ा।
अम्हे खेलीअ	=	हमने खेला।
अम्हे चलीअ	=	हम चले।

मध्यम पुरुष :

एकवचन

तुमं पढीअ	=	तुमने पढ़ा।
तुमं खेलीअ	=	तुमने खेला/तुम खेले।
तुमं चलीअ	=	तुम चले।

बहुवचन

तुम्हे पढीअ	=	तुम सबने पढ़ा।
तुम्हे खेलीअ	=	तुम सबने खेला।
तुम्हे चलीअ	=	तुम सब चले।

अन्य पुरुष :

एकवचन

सा पढीअ	=	उस (स्त्री) ने पढ़ा।
मित्तं पढीअ	=	मित्र ने पढ़ा।
बालो पढीअ	=	बालक ने पढ़ा।

बहुवचन

ताओ पढीअ	=	उन (स्त्रियों) ने पढ़ा।
मित्ताणि पढीअ	=	मित्र ने पढ़ा।
बाला पढीअ	=	बालक ने पढ़ा।

(ग) क्रियारूप (भविष्य काल)

पढ + इ + हि + प्रत्यय

उत्तम पुरुष :

एकवचन

अहं पढिहिमि	=	मैं पढ़ूंगा।
अहं खेलिहिमि	=	मैं खेलूंगा।
अहं चलिहिमि	=	मैं चलूंगा।

बहुवचन

अम्हे पढिहामो	=	हम पढ़ेंगे।
अम्हे खेलिहामो	=	हम खेलेंगे।
अम्हे चलिहामो	=	हम चलेंगे।

मध्यम पुरुष :

एकवचन

तुमं पढिहिसि	=	तुम पढ़ोगे।
तुमं खेलिहिसि	=	तुम खेलोगे।
तुमं चलिहिसि	=	तुम चलोगे।

बहुवचन

तुम्हे पढिहित्था	=	तुम सब पढ़ोगे।
तुम्हे खेलिहित्था	=	तुम सब खेलोगे।
तुम्हे चलिहित्था	=	तुम सब चलोगे।

अन्य पुरुष :

एकवचन

सा पढिहिइ	=	उस (स्त्री) पढ़ेगी।
मित्तं पढिहिइ	=	मित्र पढ़ेगा।
बालो पढिहिइ	=	बालक पढ़ेगा।

बहुवचन

ताओ पढिहिन्ति	=	वे (स्त्रियां) पढेंगी।
मित्ताणि पढिहिन्ति	=	मित्र पढ़ेंगे।
बाला पढिहिन्ति	=	बालक पढ़ेंगे।

(घ) क्रियारूप (आज्ञा/इच्छा)

पढ + प्रत्यय

उत्तम पुरुष :

एकवचन

अहं पढमु	=	मैं पढ़ूं।
अहं खेलमु	=	मैं खेलूं।
अहं चलमु	=	मैं चलूं।

बहुवचन

अम्हे पढमो	=	हम सब पढ़ें।
अम्हे खेलमो	=	हम सब खेलें।
अम्हे चलमो	=	हम सब चलें।

मध्यम पुरुष :

एकवचन

तुमं पढहि	=	तुम पढ़ो।
तुमं खेलहि	=	तुम खेलो।
तुमं चलहि	=	तुम चलो।

बहुवचन

तुम्हे पढह	=	तुम सब पढ़ो।
तुम्हे खेलह	=	तुम सब खेलो।
तुम्हे चलह	=	तुम सब चलो।

अन्य पुरुष :

एकवचन

सा पढउ	=	उस (स्त्री) पढ़े।
मित्तं पढउ	=	मित्र पढ़े।
बालो पढउ	=	बालक पढ़े।

बहुवचन

ताओ पढन्तु	=	वे (स्त्रियां) पढ़ें।
मित्ताणि पढन्तु	=	मित्र पढ़ें।
बाला पढन्तु	=	बालक पढ़ें।

(ङ) आकारान्त, एकारान्त एवं ओकारान्त क्रियाएँ

गा, णे, हो + प्रत्यय

वर्तमान काल :

एकवचन			बहुवचन
अहं गामि	=	मैं गाता हूं	अम्हे गामो
तुमं गासि	=	तुम गाते हो	तुम्हे गाइत्था
सो गाइ	=	वह गाता है	ते गान्ति

भूतकाल :

एकवचन			बहुवचन
अहं गाही	=	मैंने गाया।	अम्हे गाही
तुमं गाही	=	तुमने गाया।	तुम्हे गाही
सो गाही	=	उसने गाया।	ते गाही

भविष्य काल :

एकवचन			बहुवचन
अहं गाहिमि	=	मैं गाऊँगा।	अम्हे गाहामो
तुमं गाहिसि	=	तुम गाओगे।	तुम्हे गाहित्था
सो गाहिइ	=	वह गायेगा।	ते गाहिन्ति

आज्ञा/इच्छा :

एकवचन			बहुवचन
कि अहं गामु	=	क्या मैं गाऊँ?	अम्हे तत्थ गामो

तुमं गाहि	=	तुम गाओ।		तुम्हे गाह
सो गाउ	=	वह गाये।		ते गान्तु

मिश्रित प्रयोग

अहं णेमि	=	मैं लेता हूँ।	अम्हे णेमो
तुमं णेसि	=	तुम लेते हो।	तुम्हे णेइत्था
सो णेइ		=वह लेता है।	ते णेन्ति
तत्थ किं होइ	=	वहां क्या होता है?	तत्थ णच्चाणि होन्ति
सो पाहिइ	=	वह पियेगा।	ते पाहिन्ति
सो ठाउ		=वह ठहरे।	ते ठान्तु
तुमं खासि	=	तुम खाते हो।	तुम्हे खाइत्था
तुमं किं णेहिसि	=	तुम क्या लाओगे?	तुम्हें किं णेहित्था

कारक/विभक्ति

वाक्य-रचना

प्रथमा विभक्ति—कर्त्ता ने

बालओ सिक्खइ	–	बालक सीखता है।
बालआ सिक्खन्ति	–	बालक सीखते हैं।
छत्तो पण्हं पुच्छइ	–	छात्र प्रश्न पूछता है।
छत्ता पण्हं पुच्छन्ति	–	छात्र प्रश्न पूछते हैं।
सुधी–उवदिसइ	–	विद्वान् उपदेश देता है।
सुधिणो उवदिसन्ति	–	विद्वान् उपदेश देते हैं।
कवी पत्तं लिहइ	–	कवि पत्र लिखता है।
कविणो लिहन्ति	–	कवि लिखते हैं।
बाला वड्ढइ	–	बालिका बढ़ती है।
बालाओ वड्ढन्ति	–	बालिकाएँ बढ़ती हैं।
माआ अच्चइ	–	माता पूजा करती है।
माआओ अच्चन्ति	–	माताएँ पूजा करती हैं।
जुवई पइदिणं अच्चइ	–	युवति प्रतिदिन पूजा करती है।

जुवईओ पइदिणं अच्चन्ति	–	युवतियाँ प्रतिदिन पूजा करती हैं।
नई सणिअं बहइ	–	नदी धीरे बहती है।
नईओ सणिअं बहन्ति	–	नदियाँ धीरे बहती हैं।
इमं णयरं अत्थि	–	यह नगर है।
इमाणि णयराणि संति	–	ये नगर हैं।
तं फलं अत्थि	–	वह फल है।
ताणि फलाणि संति	–	वे फल हैं।

द्वितीया विभक्ति–कर्म-को

ते ममं पासन्ति	–	वे मुझको देखते हैं।
ते अम्हे पासन्ति	–	वे हम सबको देखते हैं।
तुमं तं पुच्छसि	–	तुम उसको पूछते हो।
तुमं ते पुच्छसि	–	तुम उन सबको पूछते हो।
पिऊ बालअं पालइ	–	पिता बालक को पालता है।
पिऊ बालआ पालइ	–	पिता बालकों को पालता है।
भूवई णरं बंधइ	–	राजा मनुष्य को बांधता है।
भूवई णरा बंधइ	–	राजा मनुष्यों को बांधता है।
माआ बालं इच्छइ	–	माता बालिका को चाहती है।
माआ बालाओ पेसइ	–	माता बालिकाओं को भेजती है।
धूआ माअं नमइ	–	पुत्री माता को नमन करती है।
धूआ माआओ नमइ	–	लड़की माताओं को नमन करती है।
अहं पुप्फं पासामि	–	मैं फूल को देखता हूँ।
अहं फलाणि भुंजामि	–	मैं फलों को खाता हूँ।
सेट्ठी घरं गच्छइ	–	सेठ घर को जाता है।
सो घराणि पासइ	–	वह घरों को देखता है।

तृतीया विभक्ति–के द्वारा/से

अहं बालएण सह गच्छामि	–	मैं बालक के साथ जाता हूँ।
अहं बालेहि सह गच्छामि	–	मैं बालकों के साथ जाता हूँ।

इमं कज्जं छत्तेण णिप्पण्णं होइ – यह कार्य छात्र के द्वारा निष्पन्न होता है।

इमाणि कज्जाणि छत्तेहि णिप्पण्णाणि होंति – ये कार्य छात्रों के द्वारा निष्पन्न होते हैं।

सा बालाए सह गच्छइ – वह बालिका के साथ जाती है।

सा बालाहि सह गच्छइ – वह बालिकाओं के साथ जाती है।

मालाए सोहा होइ – माला से शोभा होती है।

सोहा मालाहि होइ – शोभा मालाओं से होती है।

पुप्फेण अच्चा होइ – फूल के द्वारा पूजा होती है।

पुप्फेहि अच्चा होइ – फूलों से पूजा होती है।

वत्थुणा परिग्गहो होइ – वस्तु से परिग्रह होता है।

वत्थूहि सुहं ण होइ – वस्तुओं से सुख नहीं होता है।

चतुर्थी विभक्ति–के लिए

इदं कमलं मज्झ अत्थि – यह कमल मेरे लिए है।

इमाणि सत्थाणि अम्हाण सन्ति – ये शास्त्र हमारे लिए हैं।

तं पुप्फं तुज्झ अत्थि – वह फूल तेरे लिए है।

ताणि फलाणि तुम्हाण सन्ति – वे फल तुम सबके लिए है।

तं सत्थं छत्तस्स अत्थि – वह शास्त्र छात्र के लिए है।

ताणि सत्थाणि छत्ताण सन्ति – वे शास्त्र छात्रों के लिए हैं।

सो बालाअ फलं दाइ – वह बालिका को फल देता है।

अहं बालाण फलाणि दामि – मैं बालिकाओं के लिए फल देता हूँ।

सिसू मालाअ कन्दइ – बच्चा माला के लिए रोता है।

सिसू मालाण कन्दइ – बच्चा मालाओं के लिए रोता है।

सो वत्थुणो धणं दाइ – यह वस्तु के लिए धन देता है।

ते वत्थूण धणं दांति – वे वस्तुओं के लिए धन देते हैं।

पंचमी विभक्ति–से

तुमं काओ बीहसि – तुम किससे डरते हो?

ते केहिंतो विरमंति – वे किनसे दूर होते हैं?

सो ममाओ फलं गिण्हइ	–	वह मुझसे फल ग्रहण करता है।
सो अम्हाहिंतो विरमइ	–	वह हमसे दूर होता है।
सीसो साहुत्तो पढइ	–	शिष्य साधु से पढ़ता है।
सीसा साहूहिंतो पढन्ति	–	शिष्य साधुओं से पढ़ते हैं।
साडित्तो वारिं पडइ	–	साड़ी से पानी गिरता है।
साडीहिंतो जलं पडइ	–	साड़ियों से पानी गिरता है।
नइत्तो वारिं णेमि	–	मैं नदी से पानी ले जाता हूँ।
अहं नईहिंतो वारिं आणेमि	–	मैं नदियों से पानी लाता हूँ।
फलत्तो रसं उप्पन्नइ	–	फल से रस उत्पन्न होता है।
फलाहिंतो रसं जायइ	–	फलों से रस पैदा होता है।
खेत्तत्तो धन्नं उप्पन्नइ	–	खेत से धान्य उत्पन्न होता है।
खेत्तेहिंतो धन्नं उप्पन्नइ	–	खेतों से धान्य उत्पन्न होता है।

षष्ठी विभक्ति–का/के/की

तं मज्झ पोत्थअं अत्थि	–	वह मेरी पुस्तक है।
ताणि पोत्थआणि अम्हाण सन्ति	–	वे पुस्तकें हमारी हैं।
इदं तुज्झ कमलं अत्थि	–	यह तेरा कमल है।
इमाणि खेत्ताणि तुम्हाण सन्ति	–	ये खेत तुम सबके हैं।
सुहिणो णाणं वड्ढइ	–	विद्वान् का ज्ञान बढ़ता है।
सुहीण णाणं बड्ढइ	–	विद्वानों का ज्ञान बढ़ता है।
सिसुणो जणओ गच्छइ	–	बच्चे का पिता जाता है।
इमं सिसूण उववणं अत्थि	–	यह बच्चों का उपवन है।
इमं वत्थं बालाअ अत्थि	–	यह वस्त्र बालिका का है।
इमाणि वत्थाणि बालाण सन्ति	–	ये वस्त्र बालिकाओं के हैं।
इमो पुत्तो माआअ अत्थि	–	यह पुत्र माता का है।
इमाण माआण पुत्ता कत्थ सन्ति	–	इन माताओं के पुत्र कहाँ हैं?
सो वत्थुणो वाबारं करइ	–	वह वस्तु का व्यापार करता है।

इमो वत्थूण आवणो अत्थि	–	यह वस्तुओं की दुकान है।
इमा पुप्फस्स लआ अत्थि	–	यह फूल की लता है।
इमा पुप्फाण लआ अत्थि	–	यह फूलों की लता है।

सप्तमी विभक्ति–में/पर

अम्हम्मि जीवणं अत्थि	–	हममें जीवन है।
अम्हेसु पाणा सन्ति	–	हम सबमें प्राण है।
तम्मि सत्ती अत्थि	–	उसमें शक्ति है।
तेसु खमा वसइ	–	उनमें क्षमा रहती है।
बाले सच्चं अत्थि	–	बालक में सत्य है।
केसु बालएसु सच्चं अत्थि	–	किन बालकों में सत्य है?
सीसे विणयं अत्थि	–	शिष्य में विनय है।
सीसेसु णाणं अत्थि	–	शिष्यों में ज्ञान है।
माआए समप्पणं अत्थि	–	माता में समर्पण है।
सुण्हासु विणयं हवइ	–	बहुओं में विनय होता है।
जुवईए लायण्णं अत्थि	–	युवती में सौन्दर्य है।
कासु जुवईसु लायण्णं णत्थि	–	किन युवतियों में सौन्दर्य नहीं है?
अहं णयरे वसामि	–	मैं नगर में रहता हूँ।
अम्हे तेसु णयरेसु वसामो	–	हम उन नगरों में रहते हैं।
फले रसं अत्थि	–	फल में रस है।
इमेसु फलेसु रसं णत्थि	–	इन फलों में रस नहीं है।

अनुवाद

1. अपठित प्राकृत अंशों का हिन्दी में भाषान्तर

(अ) इमे लोए बहू जीवा सन्ति। रुक्खेसु, लआसु, जले, अग्गीए, पवणे, थले वि पाणा हवन्ति। इमे एगिन्दिया जीवा सन्ति। मक्कुणे (खटमले) दोण्णि इंदियाणि हवन्ति। पिवीलिआए तिण्णि इंदियाणि हवन्ति। मक्खिआए चउरो इंदियाणि हवन्ति। सप्पे पंच इंदियाणि हवन्ति। पक्खी, पसू, मणुस्सो, पंचिन्दियो जीवो अत्थि। तेसु फासो, रसणा, घाणो, चक्खू सवणो य इमाणि पंच इंदियाणि सन्ति।

पक्खिणो अम्हाण सहअरा हवन्ति। ते मणुस्साण मित्ताणि हवन्ति। पभाये पक्खिणो कलअलसरेण गीअं गाअन्ति। ताण सरो महुरो हवइ। पक्खीसु काओ कण्हो हवइ। हंसो धवलो हवइ। कोइला काली हवइ किन्तु सा महुरसरेण गाइ। मोरा अइसुन्दरा हवन्ति। ते माणुसस्स भासाए वि बोल्लन्ति। कुक्कुडा पभाये पवोहयन्ति। पिवीलिआओ परिस्समेण जणाण पेरणं देन्ति।

माणुसस्स जीवणे पसूण वि महत्तं अत्थि। पसुणो जणस्स सहयोगिणो सन्ति। अस्सो भारं वहइ। जणा अस्सेण सह जत्तासु गच्छन्ति। अस्सो णरस्स मित्तं अत्थि। कुक्कुरो माणुसस्स रक्खं करइ। सो अम्हाण गिहाणि चोराहिन्तो रक्खइ। बइलो किसाणस्स मित्तं अत्थि। सो हलं सअडं य करिसइ। बइला खेत्तं करिसन्ति। धेणू अम्हाण दुद्धं देइ। सा तणाणि खाइऊण बहुमुल्लं बलजुत्तं आहारं देइ। अजा वि दुद्धं देइ। जणाण गिहेसु मज्जारा मूसआ वि वसन्ति।

मरुथले कमेला (ऊट्टा) संचरन्ति। वणे गआ भमन्ति। तेसु अहिअं बलं हवइ। तत्थ सीहो वि गज्जइ। तस्स गज्जणेण मिआ धावन्ति। सिआला गच्छन्ति। वाणरा साहासु कूदन्ति। सव्वे जीवा जीविउं इच्छन्ति, ण मरिउं। अओ तेसु अभएण भविअव्वं। ते सहावेण हिंसआ ण सन्ति। अअएव के वि जीवा ण पीडिअव्वा।

(ब) इअं लोअं विचित्तं अत्थि। अत्थ चेअणाणि अचेअणाणि य दव्वाणि सन्ति। ताणं सरूवं सया परिवट्टइ। बालओ बालअत्तो जुवाणो हवइ। जुवाणो जुवणत्तो बुड्ढो हवइ। णरा णरत्तो पसुजोणीए गच्छन्ति। पसुणो पसुत्तो णरजम्मे उप्पण्णान्ति। रुक्खो बीजत्तो उप्पन्नइ। बीजो रुक्खत्तो उप्पन्नइ। फलत्तो रसं उप्पण्णइ। पुप्फत्तो सुयंधो आवइ। वारित्तो कमलं णिस्सरइ। रुक्खत्तो जुण्णाणि पत्ताणि पडन्ति। दहित्तो घयं जाअइ। दुद्धत्तो दहि हवइ।

एगसमये मुक्खो विउसत्तो बीहइ। छत्तो गुरुत्तो पढइ। कवी णिवत्तो आयरं गेण्हइ। बहू सासुत्तो धणं मग्गइ। बाला माअत्तो दुद्धं मग्गइ। किन्तु अण्णसमये परिवट्टणं जाअइ। विउसा मुक्खाहिंतो बीहन्ति। गुरुणो छत्ताहिंतो सिक्खन्ति। णिवा कवीहिन्तो पसंसं गेण्हन्ति। सासूओ बहूहिन्तो वत्थाणि मग्गन्ति। माआओ बालाहिन्तो भोअणं गेण्हन्ति। साहुणा असाहूहिन्तो भयं करन्ति। कुसला जणा सेवन्ति। सढा सोसणं करन्ति। इमं लोअस्स विचित्तं सरूवं। जओ णाणिजणा विवेएण संसारस्स कज्जाणि करन्ति।

(स) जणा सगुणेहि पुज्जणीआ हवन्ति। माणवजीवणे गुरुणो, पिअरस्स, जणणीए ठाणं महत्तपुण्णं अत्थि। गुरुणा बिणा को णाणं लहिहिइ? गुरुणो अम्हाण दोसं दूरं करन्ति। स-उवदेसजलेण अम्हाण बुद्धिं पक्खालयन्ति। जआ सीसा गुरूण समीवे पढिउं गच्छन्ति तआ ते एवं उवदिसन्ति-'सच्चं बोल्लह। धम्मं कुणह। सज्झाए पमायं मा कुणह। सआ देसस्स धम्मस्स सेवं कुणह।' अअएव गुरुणो अम्हाण मग्गदरिसआ सन्ति। जे सीसा सगुरुणो सेवं करन्ति, तेसु सद्धं करन्ति, ताहिन्तो णाणं गिण्हन्ति, ते सआ लोए सुहं लहन्ति।

अम्हाण जीवणे पिअरस्स ठाणं वि महत्तपुण्णं अत्थि। पिअरो अम्हाण पालओ अत्थि। सो नियएण परिस्समेण धणेण य अम्हे पालइ रक्खइ य। पिअरो कुडुम्बस्स पहाणो हवइ। अओ अम्हेहि तस्स आणं सआ पालणीअं। पिअरो केवलं पालओ ण होइ, किन्तु सो बालआण मित्तो, विज्जादाआ वि हवइ। पिअरो सआ कुडुम्बस्स कल्लाणं चिन्तइ। अओ गुणवन्ता पुत्ता पिअरे सद्धं करन्ति, तस्स आणं मण्णन्ति तहा सेवं करन्ति।

अम्हाण पुज्जणीएसु जणणीए ठाणं सव्वोच्चं अत्थि। माआ सिसुं केवलं ण जम्मइ, किन्तु सा तस्स निम्माणं करइ। माआ अम्हे जणणइ। अम्हे माआअ दुद्धं पिबामो। माआअ दुद्धं सिसुणा जीवणं हवइ। जणणी सिसुं णेहं कुणइ। सा सअं दुक्खं सहइ, किन्तु कआवि सिसुं दुक्खं ण देइ। अओ लोए पसिद्धं—'माआ कआवि कुमाआ ण हवइ।' जे पुत्ता जणणीए आणं पालन्ति, ताअ सेवं कुणन्ति, ते लोए सुपुत्ता हवन्ति। इमा पुढ़वी वि जणस्स माआ अत्थि। अम्हे भारअमाआअ पुत्ता सन्ति। अअएव जम्मभूमीए रक्खणं अम्हाण कत्तव्वं अत्थि।

अम्हाण इमं कत्तव्वं अत्थि जओ अम्हे गुरूण, पिअरस्स, जणणीए एवं जम्मभूमीए आयरं सेवं य कुणमो। इमे अम्हाण पुज्जणीआ सन्ति।

2. अपठित हिन्दी अंशों का प्राकृत में भाषान्तर

(अ) राजा भीम ने दमयन्ती के स्वयंवर की घोषणा की तथा सभी देशों के राजकुमारों को आमंत्रित किया। दमयन्ती की सुन्दरता को सुनकर प्रधान देवों ने भी उससे विवाह करना चाहा और उन लोगों ने भी स्वयंवर में भाग लिया। उन लोगों ने दमयन्ती के पास अपनी अभिलाषा को कहने के लिए एक दूत को भी भेजा। वे समझ गये कि दमयन्ती का हृदय नल पर अनुरक्त हो गया है और इसलिए ये चार देवता ठीक नल के रूप में स्वयंवर में प्रकट हुए। दमयन्ती पांच नलों को देखकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गई और वास्तविक नल को नहीं चुन सकी। उसने देवों से प्रार्थना की,–"मैंने नल के गुणों को सुना है तथा मैंने उन्हें अपने पति के रूप में वरण किया है। सत्य के लिए,, देवता लोग अपने स्वरूप को ग्रहण कर लें और मेरे लिए उन्हें प्रत्यक्ष करें।" उसकी दृढ़ धारणा देखकर उन्होंने अपने स्वरूप को ग्रहण कर लिया। तब दमयन्ती ने नल के गले में माला डाल दी। देवताओं ने प्रसन्न होकर वर-वधू को अनेक वरदान दिये।

(ब) एक किसान के पास एक मुर्गी थी, जो प्रतिदिन सोने का एक अण्डा दिया करती थी। वह लालची मनुष्य इससे सन्तुष्ट नहीं था। एक दिन उसने सोचा, "यह मुर्गी मुझे प्रतिदिन एक ही अण्डा देती है। इसके पेट में सोने के ऐसे बहुत से अण्डे होंगे। यदि मैं सबको एक ही समय पाऊँ तो मैं धनी हो सकता हूँ। अतएव उसने मुर्गी को मारकर उसके पेट को छुरी से काट दिया। लेकिन उसके पेट में एक अण्डा भी नहीं मिला। इस प्रकार जो वह सोने का अण्डा प्रतिदिन पाता था, उससे भी वंचित हो गया। साथ ही वह मुर्गी भी समाप्त हो गई। किसान ने अपनी मूर्खता पर खेद प्रकट किया और पश्चाताप में डूब गया। वस्तुतः असन्तोष और लालच सब दुःखों की जड़ है।

(स) भारत ऋतु-प्रधान देश है। विश्व-भर में हमार देश ही ऐसा देश है, जहां वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा शरत्, हेमन्त और शिशिर ऋतुएं प्रकृति के प्रांगण में अपना-अपना अभिनय दिखाती है। इन सब में श्रेष्ठ, मादक और हृदयग्राही अभिनय वसन्त का है। इसीलिए इसे ऋतुराज की उपाधि से विभूषित किया गया है।

परिवर्तन सृष्टि का शाश्वत नियम है। प्रकृति भी इस नियम से बंधी चलती है। उसका रूप कभी कठोर होता है तो कभी कोमल। ऊषा, संध्या, सस्यश्यामला भूमि, पुष्पित लता-पादप आदि में उसके कोमल रूप के दर्शन होते हैं। वसन्त ऋतु ही एक ऐसी ऋतु है, जिसमें प्रकृति नव्य-भव्य और कोमल रूप में अपनी मादक छटा दिखाती है। वसन्त

आया और प्रकृति नव वधू की भांति खिल उठती, प्रकृति को इस रूप में देख प्राणि-जगत् भी हर्षविह्वल हो उठता है।

(द) आज के युग में विद्यार्थी और समाज के जीवन को लेकर जिन जिन विषयों की चर्चा की जाती है, उनमें सर्वाधिक चर्चित विषय है अनुशासन। अनुशासन किसी भी व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र की उन्नति का मूलाधान है। अनुशासनरहित जीवन में उन्नति और अभ्युदय की कल्पना को कोई स्थान नहीं। चाहे कोई राष्ट्र धन सम्पत्ति को प्राप्त कर भौतिक उन्नति के चरम शिखर पर पहुंच जाय, किन्तु यदि वहां के निवासियों के जीवन में अनुशासन का अभाव है तो उनकी सारी उन्नति ढोल की पोल के समान खोखली और निस्सार है।

परिशिष्ट

1. अकारान्त पुल्लिंग देव शब्द

प्र. देवो, देवे	–	देवा
द्वि. देवं	–	देवा, देवे
तृ. देवेण, देवेणं	–	देवेहि, देवेहिं, देवेहिँ
च. देवाय, देवाए, देवस्स	–	देवाण, देवाणं
पं. देवत्तो, देवाओ, देवाउ देवाहि, देवाहिन्तो, देवा	–	देवाहि, देवेहि, देवाहिन्तो, देवेहिन्तो, देवासुंतो, देवेसुंतो
ष. देवस्स	–	देवाण, देवाणं
स. देवे, देवंसि, देवम्मि	–	देवेसुं, देवेसु
सं. हे देव, हे देवो, हे देवा	–	हे देवा

2. इकारान्त पुल्लिंग मुणि (मुनि) शब्द

प्र. मुणी	–	मुणिणो, मुणी, मुणउ, मुणओ
द्वि. मुणिं	–	मुणिणो, मुणी
तृ. मुणिणा	–	मुणीहिं, मुणीहिँ, मुणीहि
च. मुणिणो, मुणिस्स, मुणये	–	मुणीणं, मुणीण
पं. मुणिणो, मुणित्तो, मुणीओ मुणीउ, मुणीहिंतो	–	मुणित्तो, मुणीओ, मुणीउ, मुणीहिंतो, मुणीसुंतो
ष. मुणिणो, मुणिस्स	–	मुणीणं, मुणीण

स. मुणिम्मि, मुणिंसि	–	मुणीसुं, मुणीसु
सं. हे मुणि, हे मुणी	–	हे मुणिणो, हे मुणी, हे मुणीउ, हे मुणीओ

उकारान्त पुल्लिंग भाणु (भानु) शब्द

प्र. भाणू	–	भाणुणो, भाणू, भाणओ, भाणउ, भाणवो
द्वि. भाणुं	–	भाणुणो, भाणू
तृ. भाणुणा	–	भाणूहिं, भाणूहिँ, भाणूहि
च. भाणवे, भाणुणो, भाणुस्स	–	भाणूणं, भाणूण
पं. भाणुणो, भाणुत्तो, भाणुओ भाणुउ, भाणूहिंतो	–	भाणुत्तो, भाणूओ, भाणूउ, भाणूहिंतो, भाणूसुंतो
ष. भाणुणो, भाणुस्स	–	भाणूणं, भाणूण
स. भाणुम्मि	–	भाणूसुं, भाणूसु
सं. हे भाणु, हे भाणू	–	हे भाणुणो, हे भाणू, हे भाणउ, हे भाणओ हे भाणवो

ऋकारान्त पिअ, पिअर, पिउ (पितृ) शब्द

प्र. पिआ, पिअरो	–	पिअरा, पिउणो, पिअउ, पिअवो, पिअओ, पिऊ
द्वि. पिअरं	–	पिअरा, पिअरे, पिउणो, पिऊ
तृ. पिउणा, पिअरेणं, पिअरेण	–	पिअरेहिं, पिअरेहिँ, पिअरेहि, पिऊहि, पिऊहिँ, पिऊहिं
च. पिअरस्स, पिउणो, पिउस्स	–	पिअराणं, पिअराण, पिऊणं, पिऊण
पं. पिउणो, पिउत्तो, पिऊउ, पिऊहिन्तो, पिअरत्तो, पिअराओ, पिअराउ, पिहराहि	–	पिअरत्तो, पिअराओ, पिअराउ, पिअराहि, पिअरेहि, पिअराहिन्तो, पिअरेहिन्तो, पिअरासुन्तो, पिअरेसुन्तो पिउत्तो, पिऊओ, पिऊउ,

पिहराहिन्तो, पिअरा		पिऊहिन्तो, पिऊसुन्तो
ष. पिअरस्स, पिउणो, पिउस्स	–	पिअराणं, पिअराण, पिऊणं, पिऊण
स. पिअरम्मि, पिअरे, पिउम्मि, पिअरंसि	–	पिअरेसुं, पिअरेसु, पिऊसुं, पिउसु
सं. हे पिअ, हे पिअर, हे पिअरा, हे पिअरो	–	हे पिउ, हे पिउणो, हे पिअवो, हे पिअओ, पिअउ

नकारान्त राय/रायाण (राजन्) शब्द

प्र. राया, रायाणो	–	रायाणो, राइणो, राया, रायाणा
द्वि. रायाणं, रायं, राइणं	–	रायाणो, राइणो, रायाणे, राए
तृ. रायाणेणं, रायाणेण, राइणा, रण्णा, राएणं राएण, रायणा	–	रायाणेहिं, रायाणेहिँ, रायाणेहि, राईहिं, राईहिँ, राईहि, राएहिँ, राएहिं, राएहि
च. रायाणस्स, रायाणो, रण्णो, राइणो, रायस्स	–	रायाणाणं, रायाणाण, राइणं, राइण, राईणं, राईण, रायाणं, रायाण
पं. रायाणत्तो, रायाणाओ, रायाणाउ, रायाणाहि, रायाणाहिन्तो, रायाणा राइणो, रायाणो, रण्णो, रायत्तो, रायाओ, रायाउ रायाहि, रायाहिन्तो, राया	–	राइत्तो, राईओ, राईउ, राईहिन्तो, राईसुन्तो, रायाणत्तो, रायाणाओ, रायाणाउ, रायाणाहि, रायाणोहि, रायाणाहिन्तो, रायाणेहिन्तो, रायाणासुन्तो, रायाणेसुन्तो, रायत्तो, रायाओ, रायाउ, रायाहि, राएहि, रायाहिन्तो राएहिन्तो, रायासुन्तो, राएसुन्तो
ष. रायाणस्स, राइणो, रण्णो, रायाणो, रायस्स	–	रायाणाणं, रायाणाण, राईणं, राईण, राइणं, राइण, रायाणं,

		रायाण
स. रायाणम्मि, रायाणे, रायम्मि, राए, राइम्मि	–	रायाणेसुं, रायाणेसु, राईसुं, राईसु, राएसुं, राएसु
सं. हे रायाण, हे रायाणा, हे रायाणो, हे राअ, हे राआ	–	हे रायाणा, ये राईणो, हे रायाणो

सव्व (सर्व) शब्द

प्र. सव्वो	–	सव्वे
द्वि. सव्वं	–	सव्वे, सव्वा
तृ. सव्वेणं, सव्वेण	–	सव्वेहिं, सव्वेहिँ, सव्वेहि
च. सव्वस्स	–	सव्वेसिं, सव्वाणं, सव्वाण
पं. सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वाहिन्तो, सव्वाहि, सव्वा	–	सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वाहि, सव्वेहि, सव्वाहिंतो, सव्वेहिंतो, सव्वासुन्तो, सव्वेसुन्तो
ष. सव्वस्स	–	सव्वेसिं, सव्वाणं, सव्वाण
स. सव्वस्सि, सव्वम्मि, सव्वत्थ, सव्वहिं	–	सव्वेसुं, सव्वेसु
सं. हे सव्व, हे सव्वो हे सव्वा	–	हे सव्वे

आकारान्त स्त्रीलिंग माला शब्द

प्र. माला	–	मालाओ, मालाउ, माला
द्वि. मालं	–	मालाओ, मालाउ, माला
तृ. मालाए, मालाअ, मालाइ	–	मालाहिं, मालाहिँ, मालाहि
च. मालाए, मालाअ, मालाइ	–	मालाणं, मालाण

पं. मालाए, मालाअ, मालाइ मालत्तो, मालाओ, मालाउ	–	मालत्तो, मालाओ, मालाउ, मालाहिन्तो, मालासुन्तो
ष. मालाए, मालाअ, मालाइ	–	मालाणं, मालाण
स. मालाए, मालाअ, मालाइ	–	मालासुं, मालासु
सं. हे माले, हे माला	–	हे मालाओ, हे मलाउ, हे माला

इकारान्त स्त्रीलिंग मइ (मति) शब्द

प्र. मई, मईआ	–	मईओ, मईउ, मई, मईआ
द्वि. मइं	–	मईओ, मईउ, मई, मईआ
तृ. मईअ, मईआ, मईइ, मईए	–	मईहिं, मईहिँ, मईहि
च. मईअ, मईआ, मईइ, मईए	–	मईणं, मईण
पं. मईअ, मईआ, मईइ, मईए, मइत्तो, मईओ, मईउ, मईहिन्तो	–	मइत्तो, मईओ, मईउ, मईहिन्तो, मईसुन्तो
ष. मईआ, मईअ, मईइ मईए	–	मईणं, मईण
स. मईअ, मईआ, मईइ मईए	–	मईसुं, मईसु
सं. हे मइ हे मई	–	हे मईओ, हे मईआ

ईकारान्त स्त्रीलिंग वाणी (वाणी) शब्द

प्र. वाणी, वाणीआ	–	वाणी, वाणीआ, वाणीउ, वाणीओ
द्वि. वाणिं	–	वाणी, वाणीआ, वाणीउ, वाणीओ
तृ. वाणीअ, वाणीआ, वाणीइ,	–	वाणीहिं, वाणीहिँ, वाणीहि

वाणीए		
च. वाणीअ, वाणीआ, वाणीइ, वाणीए	–	वाणीणं, वाणीण
पं. वाणीअ, वाणीआ, वाणीइ, वाणीए, वाणित्तो, वाणीओ, वाणीउ	–	वाणीत्तो, वाणीओ, वाणीउ, वाणीहिन्तो, वाणीसुन्तो
ष. वाणीअ, वाणीआ, वाणीइ, वाणीए	–	वाणीणं, वाणीण
स. वाणीअ, वाणीआ, वाणीइ, वाणीए	–	वाणीसुं, वाणीसु
सं. हे वाणि, हे वाणी	–	हे वाणी, हे वाणीआ

उकारान्त स्त्रीलिंग धेणु (धेनु) शब्द

प्र. धेणू	–	धेणूउ, धेणूओ, धेणू
द्वि. धेणुं	–	धेणूउ, धेणूओ, धेणू
तृ. धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए	–	धेणूहिं, धेणूहिँ, धेणूहि
च. धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए	–	धेणूणं, धेणूण
पं. धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए, धेणूत्तो, धेणूओ, धेणूउ, धेणूहिन्तो	–	धेणुत्तो, धेणूओ, धेणूउ, धेणूहिन्तो, धेणूसुन्तो
ष. धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए	–	धेणूणं, धेणूण
स. धेणूअ, धेणूआ, धेणूइ, धेणूए	–	धेणूसुं, धेणूसु

सं. हे धेणु, हे धेणू	–	हे धेणूउ, हे धेणूओ, हे धेणू

ऊकारान्त स्त्रीलिंग वहू (वधू) शब्द

प्र. वहू	–	वहूअ, वहूओ, वहू
द्वि. वहुं	–	वहूअ, वहूओ, वहू
तृ. वहूआ, वहूअ, वहूइ, वहूए	–	वहूहिं, वहूहिँ, वहूहि
च. वहूआ, वहूअ, वहूइ, वहूए	–	वहूणं, वहूण
पं. वहूआ, वहूअ, वहूइ वहूए, वहुत्तो, वहूओ, वहूउ, वहूहिन्तो	–	वहुत्तो, वहुओ, वहुउ, वहूहिन्तो, वहूसुन्तो
ष. वहूआ, वहूअ, वहूइ वहूए	–	वहूणं, वहूण
स. वहूआ, वहूअ, वहूइ, वहूए	–	वहूसुं, वहूसु
सं. हे वहु, हे वहू	–	हे वहूअ, हे वहूओ, हे वहू

ऋकारान्त स्त्रीलिंग माआ/माअरा/माउ (मातृ) शब्द

प्र. माआ, माअरा	–	माअरा, माअराउ, माअराओ, माआ, माआउ, माआओ, माऊ, माऊउ, माऊओ
द्वि. माअं, माअरं	–	माअरा, माअराउ, माअराओ, माआ, माआउ, माआओ, माऊ, माऊउ, माऊओ
तृ. माअराइ, माअराए, माअराअ, माआए,	–	माअराहिं, माअराहिँ, माअराहि, माआहिं, माआहिँ, माआहि,

माआइ, माआअ, — माऊहिं, माऊहिँ, माऊहि
माऊआ, माऊअ,
माऊए, माऊइ

च. माअराइ, माअराए, — माअराणं, माअराण, माआणं,
माअराअ, माआए, माआण, माऊणं, माऊण, माईणं,
माआइ, माआए, माईण
माऊआ, माऊअ,
माऊए, माऊइ

पं. माअराइ, माअराए, — माअरत्तो, माअराओ, माअराउ,
माअराअ, माआए, माअराहिन्तो, माअरासुन्तो,
माआइ, माआअ, माऊआ, माअत्तो, माआओ, माआउ,
माऊअ, माऊए, माऊइ, माआहिन्तो, माआसुन्तो, माउत्तो,
माअरत्तो, माअराओ, माऊओ, माऊउ, माऊहिन्तो,
माअराउ, माअराहिन्तो, माऊसुन्तो
माअत्तो, माआओ,
माआउ, माआहिन्तो,
माउत्तो, माऊओ, माऊउ,
माऊहिन्तो

ष. माअराइ, माअराए, — माअराणं, माअराण, माआणं,
माअराअ, माआए, माआण, माऊणं, माऊण, माईणं,
माआइ, माआअ, माईण
माऊआ, माऊअ, माऊए,
माऊइ

स. माअराइ, माअराए, — माअरासुं, माअरासु, माआसुं,
माअराअ, माआए, माआसु, माऊसुं, माऊसु

माआइ, माआअ, माऊआ,		
माऊअ, माऊए, माऊइ		
सं. हे माआ	–	हे माआओ, माआउ, माआ

आकारान्त सव्वा (सर्वा) शब्द

प्र. सव्वा	–	सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वा
द्वि. सव्वं	–	सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वा
तृ. सव्वाअ, सव्वाइ, सव्वाए	–	सव्वाहि, सव्वाहिं, सव्वाहिँ
च. सव्वाअ, सव्वाइ, सव्वाए	–	सव्वेसिं, सव्वाहिं, सव्वाहिँ
पं. सव्वाअ, सव्वाइ, सव्वाए, सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वाहिंतो	–	सव्वत्तो, सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वाहिन्तो, सव्वासुन्तो
ष. सव्वाअ, सव्वाइ, सव्वाए	–	सव्वेसिं, सव्वाण, सव्वाणं
स. सव्वाअ, सव्वाइ, सव्वाए	–	सव्वासु, सव्वासुं
सं. हे सव्वे, सव्वा	–	हे सव्वाओ, सव्वाउ, सव्वा

नपुंसक लिङ्ग

अकारान्त वण (वन) शब्द

प्र. वणं	–	वणाइँ, वणाइं, वणाणि
द्वि. वणं	–	वणाइँ, वाणाइं, वणाणि
तृ. वणेण	–	वणेहि, वणेहिं, वणेहिँ
च. वणस्य	–	वणाणं, वणाण
पं. वणत्तो, वणाओ, वणाउ, वणाहि, वणाहिंतो, वणा	–	वणत्तो, वणाओ, वणाउ, वणाहि, वणाहिंतो, वणासुंतो
ष. वणस्स	–	वणाणं, वणाण
स. वणे, वणम्मि	–	वणेसु, वणेसुं
सं. हे वण	–	हे वणाइं, हे वणाइँ, हे वणाणि

इकारान्त दहि (दधि) शब्द

प्र. दहिं, दहि, दहिँ	–	दहीइँ, दहीइं, दहीणि
द्वि. दहिं	–	दहीइँ, दहीइं, दहीणि
तृ. दहिणा	–	दहीहिं, दहीहिँ, दहीहि
च. दहिणो, दहिस्स	–	दहीण, दहीणं
पं. दहिणो, दहित्तो, दहीओ, दहीउ, दहीहिंतो	–	दहित्तो, दहीओ, दहीउ, दहीहिंतो, दहीसुंतो
ष. दहिणो, दहिस्स	–	दहीण, दहीणं
स. दहिम्मि	–	दहीसु, दहीसुं
सं. हे दहि	–	हे दहीइँ, दहीइं, दहीणि

उकारान्त महु (मधु) शब्द

प्र. महुं, महु, महुँ	–	महूइं, महूइँ, महूणि
द्वि. महुं	–	महूइं, महूइँ, महूणि
तृ. महुणा	–	महूहि, महूहिं, महूहिँ
च. महुणो, महुस्स	–	महूण, महूणं
पं. महुणो, महुत्तो, महूओ, महूउ, महूहिंतो	–	महुत्तो, महूओ, महूउ, महूहिंतो, महूसुंतो
ष. महुणो, महुस्स	–	महूण, महूणं
स. महुम्मि	–	महूसु, महूसुं
सं. हे महु	–	हे महूइं, महूइँ, महूणि

संख्यावाची पुंलिंग एग (एक) शब्द

प्र. एगो, एगे	–	एगे
द्वि. एगं	–	एगे, एगा
च.ष. एगस्स	–	एगण्हं, एगण्ह, एगेसिं

(शेष सर्ववत्)

स्त्रीलिंग

प्र. एगा	–	एगाओ, एगाउ, एगा
द्वि. एगं	–	एगाओ, एगाउ, एगा
च.ष. एगाअ, एगाइ, एगाए	–	एगासिं, एगेसिं, एगण्ह, एगण्हं

(शेषं सव्वावत्)

नपुसंकलिंग

प्र.द्वि. एगं	–	एगाइं, एगाइँ, एगाणि

(शेषं सव्वंवत्)

दो, वे (द्वि) शब्द

(दो से लेकर दस शब्द तक के रूप बहुवचन में चलते हैं।)

प्र.द्वि. दुवे, दोण्णि, दुण्णि, वेण्णि,
विण्णि, दो, वे

तृ. दोहि, दोहिँ, दोहिं, वेहि,
वेहिँ, वेहिं

च.ष. दोण्हं, दोण्ह, दुण्हं, दुण्ह,
वेण्हं, वेण्ह, विण्हं, विण्ह,

पं. दुत्तो, दोओ, दोउ, दोहिंतो,
दोसुन्तो, वित्तो, वेओ, वेहिन्तो, वेसुन्तो

स. दोसु, दोसुं, वेसु, वेसुं

ति (त्रि) शब्द

प्र.द्वि. तिण्णि

तृ. तीहि, तीहिँ तीहिं

च.ष. तिण्हं, तिण्ह

पं. तित्तो, तीओ, तीउ,

तीहिन्तो, तीसुन्तो

स. तीसुं, तीसु

चउ (चतुर्) शब्द

प्र.द्वि. चत्तारो, चउरो, चत्तारि

तृ. चऊहि, चऊहिँ, चऊहिं, चउहि, चउहिँ, चउहिं

च.ष. चउण्हं, चउण्ह

पं. चउत्तो, चऊओ, चऊउ, चऊहिंतो, चऊसुंतो, चउओ, चउउ,

चउहिंतो, चउसुंतो

स. चऊसु, चऊसुं, चउसु, चउसुं

पञ्च (पञ्चन्) शब्द

प्र.द्वि. पंच

तृ. पंचहि, पंचहिँ, पचहिं

च.ष. पंचण्हं, पंचण्ह

पं. पंचत्तो, पंचाओ, पंचाउ, पंचाहिंतो,

पंचासुंतो

स. पंचसु, पंचसुं

छ (षष्) शब्द

प्र.द्वि. छ

तृ. छहि, छहिँ, छहिं

च.ष. छण्हं, छण्ह

पं. छत्तो, छाओ, छाउ, छाहिंतो, छासुन्तो, छसु, छसुं

सत्त (सप्तन्) शब्द

प्र.द्वि. सत्त

तृ. सत्तहि, सत्तहिँ, सत्तहिं

च.ष. सत्तण्हं, सत्तण्ह

पं. सत्तत्तो, सत्ताओ, सत्ताउ, सत्ताहिंतो, सत्तासुंतो

स. सत्तसु, सत्तसुं

अट्ठ (अष्टन्) शब्द

प्र.द्वि. अट्ठ

तृ. अट्ठहि, अट्ठहिँ, अट्ठहिं

च.ष. अट्ठण्णं, अट्ठण्ह

पं. अट्ठत्तो, अट्ठाओ, अट्ठाउ, अट्ठाहिंतो, अट्ठासुंतो

स. अट्ठसु, अट्ठसुं

णव (नव) शब्द

प्र.द्वि. नव

तृ. नवहि, नवहिँ, नवहिं

च.ष. नवण्हं, नवण्ह

पं. नवत्तो, नवाओ, नवाउ, नवाहिंतो, नवासुंतो

स. नवसुं, नवसु

धातुरूपावलि

गम्/ गच्छ (गच्छ) गतौ

वर्तमानकाल

	एक वचन	बहु वचन
प्र. पु.	गच्छइ	गच्छन्ति
म. पु.	गच्छसि	गच्छह
उ. पु.	गच्छामि	गच्छामो

विध्यर्थक

	एक वचन	बहु वचन
प्र. पु.	गच्छिज्ज, गच्छेज्ज, गच्छिज्जा, गच्छेज्जा, गच्छे	गच्छिज्ज, गच्छेज्ज, गच्छिज्जा, गच्छेज्जा, गच्छे
म. पु.	गच्छिज्ज, गच्छेज्ज, गच्छिज्जा, गच्छेज्जा, गच्छे, गच्छेज्जासि	गच्छिज्जा, गच्छेज्ज, गच्छिज्जा, गच्छेज्जा, गच्छे, गच्छेज्जाह
उ. पु.	गच्छिज्ज, गच्छेज्ज, गच्छिज्जा, गच्छेज्जा, गच्छे, गच्छेज्जामि	गच्छिज्ज, गच्छेज्ज, गच्छिज्जा, गच्छेज्जा, गच्छे, गच्छेज्जामो

आज्ञावाची

प्र. पु.	गच्छउ	गच्छन्तु
म. पु.	गच्छाहि, गच्छ	गच्छह (गच्छेह)
उ. पु.	गच्छामि	गच्छामो

भविष्यत्काल

प्र. पु.	गच्छिस्सइ, गच्छिहिइ	गच्छिस्सन्ति, गच्छिहिन्ति
म. पु.	गच्छिस्ससि, गच्छिहिसि	गच्छिस्सह, गच्छिहिह
उ. पु.	गच्छिस्सामि, (गच्छिस्सं, गच्छं) गच्छिहामि	गच्छिस्सामो, गच्छिहामो

भूतकाल

प्र. पु.	गच्छिंसु	गच्छिंसु
म. पु.	गच्छिंसु	गच्छिंसु
उ. पु.	गच्छिंसु	गच्छिंसु

प्रेरणार्थक

वर्तमानकाल

प्र. पु.	गच्छावेइ	गच्छाविन्ति, गच्छावेन्ति
म. पु.	गच्छावेसि	गच्छावेह
उ. पु.	गच्छावेमि	गच्छावेमो

विध्यर्थक

प्र. पु.	गच्छावेज्जा, गच्छावेज्ज, गच्छाविज्जा, गच्छाविज्ज	गच्छावेज्जा, गच्छाविज्जा, गच्छावेज्ज, गच्छाविज्ज
म. पु.	गच्छावेज्जा, गच्छावेज्ज, गच्छाविज्जा, गच्छाविज्ज, गच्छावेज्जासि	गच्छावेज्जा, गच्छावेज्ज, गच्छाविज्जा, गच्छाविज्ज, गच्छावेज्जाह
उ. पु.	गच्छावेज्जा, गच्छावेज्ज, गच्छाविज्जा, गच्छाविज्ज, गच्छावेज्जामि	गच्छावेज्जा, गच्छावेज्ज, गच्छाविज्जा, गच्छाविज्ज, गच्छावेज्जामो

आज्ञार्थक

प्र. पु.	गच्छावेउ	गच्छाविन्तु, गच्छावेन्तु
म. पु.	गच्छावेहि	गच्छावेह
उ. पु.	गच्छावेमि	गच्छावेमो

भविष्यत्काल

प्र. पु.	गच्छाविस्सइ, गच्छाविहिइ	गच्छाविस्सन्ति, गच्छाविहिन्ति
म. पु.	गच्छाविस्ससि, गच्छाविहिसि	गच्छाविस्सह, गच्छाविहिह
उ. पु.	गच्छाविस्सामि, गच्छाविहामि	गच्छाविस्सामो, गच्छाविहामो

भूतकाल

प्र. पु. उ. पु.	गच्छाविंसु	गच्छाविंसु

वर्तमान

प्र. पु.	गच्छिज्जइ	गच्छिज्जन्ति
म. पु.	गच्छिज्जसि	गच्छिज्जह
उ. पु.	गच्छिज्जामि	गच्छिज्जामो

विध्यर्थक

प्र. पु.	गच्छिज्जेज्जा, गच्छिज्जेज्ज,	गच्छिज्जेज्जा, गच्छिज्जेज्ज,
	गच्छिज्जिज्जा, गच्छिज्जिज्ज,	गच्छिज्जिज्जा, गच्छिज्जिज्ज,
	गच्छिज्जे	गच्छिज्जे
म. पु.	गच्छिज्जेज्जा, गच्छिज्जेज्ज,	गच्छिज्जेज्जा, गच्छिज्जेज्ज,
	गच्छिज्जिज्ज, गच्छिज्जिज्ज,	गच्छिज्जिज्जा, गच्छिज्जिज्ज,
	गच्छिज्जेज्जासि	गच्छिज्जेज्जाह
उ. पु.	गच्छिज्जेज्जामि	गच्छिज्जेज्जामो

शेष पूर्ववत्

आज्ञार्थक

प्र. पु.	गच्छिज्जउ	गच्छिज्जन्तु
म. पु.	गच्छिज्जाहि, गच्छिज्ज	गच्छिज्जह, गच्छिज्जेह
उ. पु.	गच्छिज्जामि	गच्छिज्जामो

भविष्यत्काल

प्र. पु.	गच्छिज्जिस्सइ,	गच्छिज्जिस्संति,
	गच्छिज्जिहिइ	गच्छिज्जिहिन्ति
म. पु.	गच्छिज्जिस्ससि,	गच्छिज्जिस्सह,

	गच्छिज्जिहिसि,	गच्छिज्जिहिह,
उ. पु.	गच्छिज्जिस्सामि,	गच्छिज्जिस्सामो,
	गच्छिज्जिहामि	गच्छिज्जिहामो

भूतकाल

प्र. म. उ. पु. गच्छिर्ज्जिसु — गच्छिर्ज्जिसु

गत्वा- गच्छित्ता, गच्छित्तु, गच्छिउं, गच्छिऊण, गच्छिय,

गन्तुम्- गच्छित्तए, गच्छित्तुं, गच्छिउं,

गच्छत्- गच्छन्त, गच्छमाण,

अस्/अस सत्तायाम्

वर्तमान

प्र. पु.	अत्थि	सन्ति
म. पु.	सि	ह
उ. पु.	अंसि, मि	मो

विध्यर्थक

प्र. पु.	सिया	सिया
म. पु.	सिया	सिया
उ. पु.	सिया	सिया

आज्ञार्थक

प्र. पु.	अत्थु	०
म. पु.	०	०
उ. पु.	०	०

भूतकाल

प्र. पु.	आसि, आसी	०
म. पु.	०	०
उ. पु.	०	आसिमो, सन्त

कर करणे

वर्तमान

प्र. पु.	करेइ	करिन्ति, करन्ति, करेन्ति
म. पु.	करेसि	करेह
उ. पु.	करेमि	करेमो

विध्यर्थक

प्र. पु.	करिज्जा, करेज्जा	करिज्जा, करेज्जा
म. पु.	करिज्जा, करेज्जा, करिज्जासि, करेज्जासि	करिज्जा ,करेज्जा, करिज्जाह, करेज्जाह
उ. पु.	करिज्जा, करेज्जा, करिज्जामि, करेज्जामि	करिज्जा, करेज्जा, करिज्जामो, करेज्जामो

आज्ञार्थक

प्र. पु.	करेउकरिन्तु, करन्तु, करेन्तु	
म. पु.	करेहि	करेह
उ. पु.	करेमि	करेमो

भविष्यत्काल

प्र. पु.	करेस्सइ, करिस्सइ,	करेस्सन्ति, करिस्सन्ति,

	करेहिति, करिहिति	करेहिन्ति, करिहिन्ति
म. पु.	करेस्ससि, करिस्ससि, करेहिसि, करिहिसि	करेस्सह, करिस्सह, करेहिह, करिहिह
उ. पु.	करेस्सामि, करिस्सामि, करेहामि, करिहामि	करेस्सामो, करिस्सामो, करेहामो, करिहामो

भूतकाल

प्र. म. उ. पु.	अकरिस्सं, अकरिंसु	अकरिस्सं, अकरिंसु

प्रेरणार्थक

वर्तमान

प्र. पु.	कारेइ, कारावेइ, करावेइ, कारवेइ	कारेन्ति, कारावेन्ति करावेन्ति, कारवेन्ति
म. पु.	कारेसि, कारावेसि, करावेसि, कारवेसि	कारेह, कारावेह, करावेह, कारवेह
उ. पु.	कारेमि, कारावेमि, करावेमि, कारवेमि	कारेमो, कारावेमो, करावेमो, कारवेमो

विध्यर्थक

प्र. पु.	कारेज्जा, कारावेज्जा, करावेज्जा, कारवेज्जा, कारिज्जा, काराविज्जा, कराविज्जा, कारविज्जा, कारेज्जा, कारावेज्ज, करावेज्ज, कारवेज्ज, कारिज्ज, काराविज्ज, कराविज्ज,	कारेज्जा, कारावेज्जा, करावेज्जा, कारवेज्जा, कारिज्जा, काराविज्जा, कराविज्जा, कारविज्जा, कारेज्जा, कारावेज्ज, करावेज्ज, कारवेज्ज, कारिज्ज, काराविज्ज, कराविज्ज,

	कारविज्ज, कारे, कारावे, करावे, कारवे	कारविज्ज, कारे, कारावे, करावे, कारवे
म. पु.	कारेज्जासि, कारावेज्जासि, करावेज्जासि, कारवेज्जासि	कारेज्जह, कारावेज्जह, करावेज्जह, कारवेज्जह
उ. पु.	कारेज्जामि, कारावेज्जामि, करावेज्जामि, कारवेज्जामि	कारेज्जामो कारावेज्जामो करावेज्जामो, कारवेज्जामो

आज्ञार्थक

प्र. पु.	कारेउ, कारावेउ, करावेउ, कारवेउ	कारेन्तु, कारावेन्तु, कारवेन्तु, करावेन्तु
म. पु.	कारेहि, कारावेहि, करावेहि, कारवेहि	कारेह, कारावेह, करावेह, कारवेह
उ. पु.	कारेमि, कारावेमि, करावेमि, कारवेमि	कारेमो, कारावेमो, करावेमो, कारवेमो

भविष्यत्काल

प्र. पु.	कारेस्सइ, काराविस्सइ, कराविस्सइ, कारविस्सइ, कारेहिति, काराविहिति, कराविहिति, कारविहिति	कारेस्सन्ति, काराविस्सन्ति, कारविस्सन्ति, कराविस्सन्ति, कारेहिन्ति, काराविहिन्ति, कारविहिन्ति, कराविहिन्ति
म. पु.	कारेस्ससि, काराविस्ससि, कराविस्ससि, कारविस्ससि, कारेहिसि, काराविहिसि, कराविहिसि, कारविहिसि	कारेस्सह, काराविस्सह, कारविस्सह, कराविस्सह, कारेहिह, कारविहिह, कराविहिह, कारविहिह
उ. पु.	कारेहामि, काराविहामि, कराविहिमि, कारविहामि,	कारेस्सामो, कारविस्सामो, कराविस्सामो, कारविस्सामो,

	कारेस्सामि, काराविस्सामि, कराविस्सामि, कारविस्सामि	कारेहामो, काराविहामो, कराविहामो, कारविहामो

भूतकाल

प्र. पु.	कारिंसु, काराविंसु, कराविंसु, कारविंसु	कारिंसु, काराविंसु, कराविंसु, कारविंसु
म. पु.	कारिंसु, काराविंसु, कराविंसु कारविंसु	कारिंसु, काराविंसु, कराविंसु, कारविंसु
उ. पु.	कारिंसु, काराविंसु, कराविंसु, कारविंसु	कारिंसु, काराविंसु, कराविंसु, कारविंसु

आज्ञार्थक

प्र. पु.	किज्जउ	किज्जन्तु
म. पु.	किज्जहि, किज्ज	किज्जह
उ. पु.	किज्जामि	किज्जामो

भूतकाल

प्र. पु. उ. पु. कज्जिसु, किर्ज्जिसु, कीरिंसु, किज्जिसु, किर्ज्जिसु, किर्ज्जिसु, कीरिंसु

कृत्वा- कारित्ता, करेत्ता, करिय, करेऊण, करिऊण, करेउं, करिउं, करेत्तु, करित्तु

कर्तुम्- करेत्तए, करित्तए, करेत्तुं, करित्तुं, करेउं, करिउं

कुर्वत्- करेन्त, करिन्त, करेमाण, करमाण0

लेखक परिचय

डॉ. समणी संगीतप्रज्ञा
जन्म : 11 जुलाई 1974, टिटिलागढ़ (ओडिशा)

शैक्षिक योग्यता

एम.ए., नेट, पी-एच.डी. (लब्ध स्वर्णपदक)

सम्प्रति

सह-आचार्य
प्राच्यविद्या एवं भाषा विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राज.)

पुरस्कार

- 'महामहिम' राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी द्वारा- पालि- प्राकृत भाषा में महर्षि वादरायण व्यास सम्मान-2014
- ऑल इण्डिया ओरिएण्टल कॉन्फ्रेंस में प्राकृत भाषा में लिखित शोध पत्र पुरस्कृत
- कालिदास समारोह में विक्रम कालिदास पुरस्कार-2010

प्रकाशन

- आचार्य महाप्रज्ञ का संस्कृत-स्तोत्र काव्य : एक अनुशीलन
- प्राकृत भाषा निर्देशिका
- विभिन्न शोध पत्रिकाओं एवं पुस्तकों में शोधालेख एवं पत्राचार पाठ्यक्रम में पाठ्य-सामग्री प्रकाशित

शोधपत्र प्रस्तुति

- विभिन्न प्रान्तों में आयोजित सेमिनार में शोध-पत्र वाचन।

जैन विश्व भारती संस्थान
(मान्य विश्वविद्यालय)
लाडनूँ-341 306, राजस्थान, फोन : 01581-226110